संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

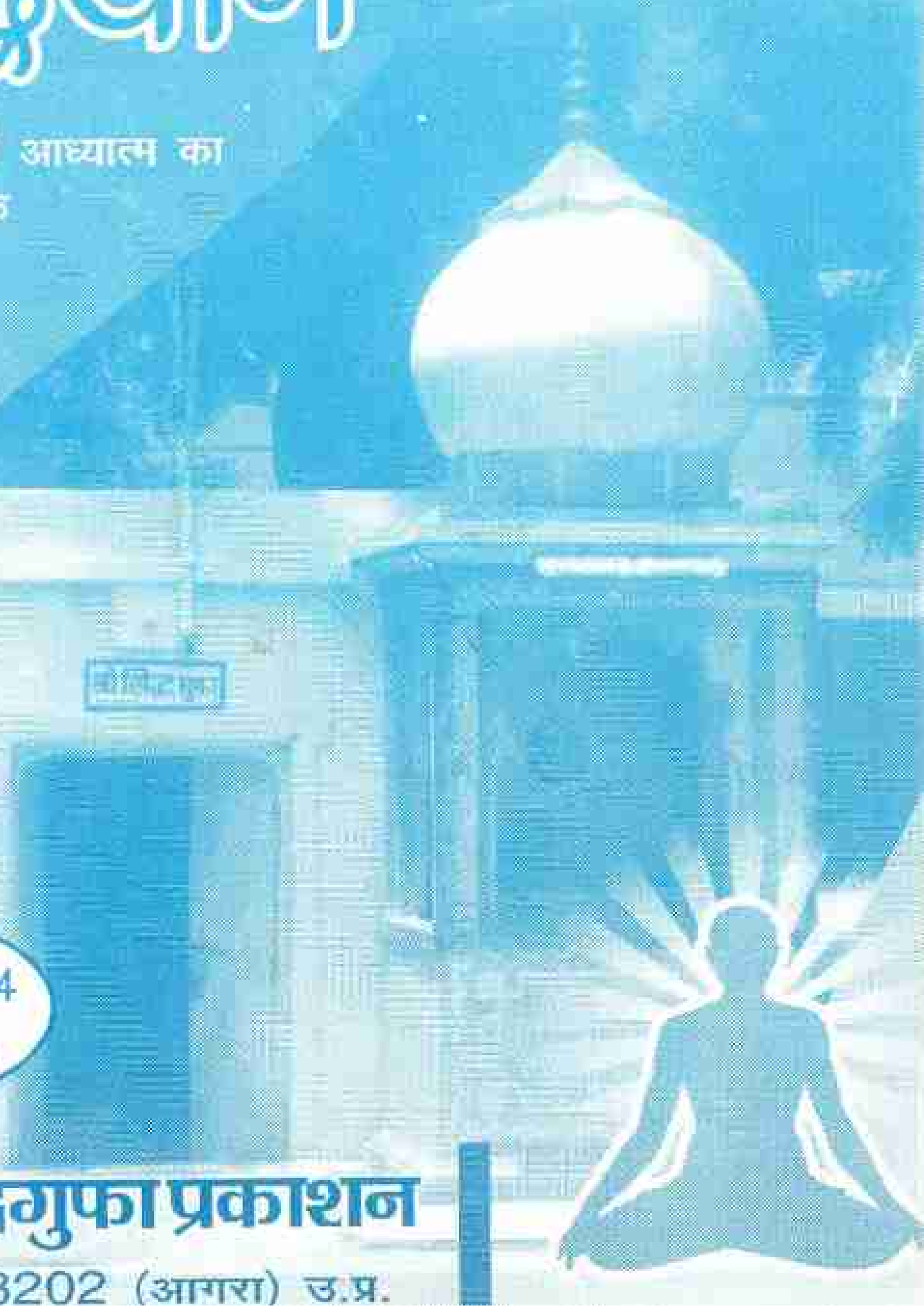

वर्ष : 41; अंक : 4
जुलाई, 2008

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपाभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

(मनु स्मृति 5/109)

अर्थात जल से शरीर की शुद्धि, सत्य से मन की शुद्धि, विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि और बुद्धि की शुद्धि होती है।

• • •

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

(छान्दोग्योपनिषद् 7/26/2)

अर्थात् जिसका आहार शुद्ध है, उसकी बुद्धि शुद्ध होती है, सात्त्विकी होजाती है और सात्त्विकी हो जाने से स्मृति दृढ़ हो जाती है और स्मृति के दृढ़ हो जाने से हृदय की सब ग्रंथियाँ खुल जाती है और इनके खुल जाने से वह मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता हुआ भगवान् के चरणों में पहुँचकर आत्मानुभूति प्राप्त कर लेता है।

• • •

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

(गीता 12/17)

अर्थात् जो कभी न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है – वह भक्तियुक्त पुरुष मुझ को प्रिय है।

• • •

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्।।

(श्रीमद्भागवत 11/14/15)

अर्थात् मुझे ब्रह्मा जो मेरे पुत्र हैं, लक्ष्मी जो मेरे वक्षःस्थल पर नित्य विलास करने वाली हैं, शंकर जो मेरे स्वरूप है और संकर्षण तथा अपना आत्मा भी उतने प्रिय नहीं है, जितने प्रिय मुझे अपने प्रेमी भक्त हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक **मासिक-पत्र**

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 41 अंक : 4

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/18)

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है। उस परमात्म ज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करने वाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं, मोक्ष की इच्छा वाला साधक शरणस्वरूप में ग्रहण करता हूँ।

जुलाई 2008

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	13
3.	भक्ति – स्वामी विवेकानन्द	16
4.	योगी ब्रह्मानन्द तथा पालब्रण्टन – डा. विजय सिंह	23
5.	गीता का कर्मयोग – पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय	26
6.	दया करो गुरुदेव (कविता) – श्री जगदीश राय बंसल	28
7.	श्री विन्ध्यवासिनी जी – श्री केशवदेव उपाध्याय	29
8.	दीप जलते रहें – डा. छोटे लाल दीक्षित	32
9.	गुरुदेव के चरणों में (कविता) – श्री त्रिजुगी नारायण मिश्र	34
10.	योग से आत्मसाक्षात्कार – श्री राजकुमार रघुवंशी	35
11.	माँ का कर्तव्य – श्री अंशुमान देव मालवीय	38
12.	तत्व क्या है? – श्री अशोक दिग्विजय	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

योगी की अचिंत्य शक्ति

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

यद्यपि योगी की शक्ति का वर्णन करना सहज बात नहीं है फिर भी पाठकों की योग जिज्ञासा बढ़े, इस बात को दृष्टि में रखते हुए योगी की क्या ताकत हुआ करती है इस पर यत्किंचित् प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। अखिल लोक पावन भगवान श्री कृष्ण जी ने भगवद्गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का परिचय देते हुए निम्नांकित श्लोक कहा है जिसको पढ़कर के हर व्यक्ति यह समझ सकेगा कि योगी की सीमा कहाँ तक है:-

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रिय:।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकाञ्चन:।।

(गीता–6/8)

अर्थात्–युक्त योगी वह कहलाता है जिसका हृदय ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण हो चुका हो और जिसने विकार रहित स्थिति उपलब्ध कर ली है। जिसके लिए लोहा, पत्थर, सोना सब एक समान हैं। ऐसा योगी **युक्त योगी** कहलाता है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है कि प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ करके संयम विधि से उन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने वाला योगी ज्ञान तृप्तात्मा एवं जिसने पूर्णतया आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है वह **विज्ञान तृप्तात्मा** कहलाता है। जिसको कामादि नहीं सताते हैं, अर्थात् विकार वाली स्थिति से जो आगे निकल जाता है ऐसा योगी युक्त योगी कहलाता है। योगियों के इस प्रकार के इतिहास मिलते हैं जिन्होंने पूर्णता को पाकर के लोहा, मिट्टी और सोना सबको बराबर समझा। श्री गोरखनाथ जी का वह उदाहरण यहाँ पूर्ण रूप से लागू होता है जबकि वह अपने गुरु देव को सिंहल द्वीप से लाने के लिए छद्म वेष से सिंहलद्वीप गये और अपने गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ को साथ लौटा लाये थे। जिस समय श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी सिंहलद्वीप से श्री गोरखनाथ जी की प्रेरणानुसार चले थे तो उन्होंने कुछ अर्थाभाव को दूर करने की इच्छा से दो सोने की ईंटें अपने पास रख लीं थीं, जिसके परिणाम स्वरूप **वह हर** समय चिंतित रहा करते थे कि इनको कोई चुरा न ले जाये। किन्तु जिस समय गोरखनाथ जी ने इस रहस्य को जाना तो उन्होंने वे दोनों सोने की ईंटें उठाकर कुएँ में डाल दीं और आगे को चल पड़े। थोड़ा समय व्यतीत हो जाने के बाद मार्ग चलते हुए जिस समय श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने अपनी सोने की ईंटों को नहीं पाया तो वे बड़े क्लेषित हुए। श्री गोरखनाथ जी ने अपने गुरुदेव के मन को चिन्तित जानकर हँसकर कहा, ''गुरुदेव आप क्यों चिन्तित हैं?''

उन्होंने सत्य–सत्य कारण बतला दिया। इस पर श्री गोरखनाथ जी हँसे और अपने गुरुदेव श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी से बोले कि महाराज आप सोने की दो ईंटों की क्यों चिंता करते हो, यह देखो यह पत्थर सोने का है। यह कहकर उन्होंने एक बड़ी भारी चट्टान पर मूत्र त्याग किया तो वह सारी चट्टान तत्क्षण सोने की बन गई। इस आश्चर्य को देखकर मत्स्येन्द्रनाथ जी समझ गये कि गोरखनाथ की कितनी शक्ति है। योगी जिस समय षट्चक्रों पर संयम करता हुआ चलता है और मणिपूरक् चक्र में पहुँच कर वहाँ संयम करता है तो उस चक्र के ध्यान का जो फल मिलता है, उसका वर्णन भगवान शिव ने शिव संहिता में इस प्रकार किया है:–

तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणि पूरके।
तस्य पाताल सिद्धि: स्यान्निरन्तर सुखावहा।।
ईप्सितं च भवेल्लोके, दु:ख रोग विनाशनम्।
कालस्य वचनं चापि परदेह प्रवेशनम्।।
जाम्बूनदादि करणं सिद्धानां दर्शन भवेत्।
औषधी दर्शनं चापि निधीनां दर्शन भवेत्।।

अर्थात्–उस पवित्र मणिपूरक चक्र में जो योगी ध्यान करता है उसको पातालसिद्धि अर्थात् पाताल में प्रवेश करने की ताकत प्राप्त हो जाती है और संसार में रहते हुए जिस चीज की वह कामना करता है वह ईप्सित पदार्थ उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है। उसके सब प्रकार के दु:खों का अवश्य नाश हो जाता है और उस योगी पर काल का अधिकार नहीं रहता। परदेह में प्रवेश करना, दिव्य औषधियों का ज्ञान, निधिदर्शन् और सोना बनाने की ताकत उसे प्राप्त हो जाती है। यदि वह योगी तीव्र संकल्प से मिट्टी या पत्थर पर मूत्रोत्सर्ग करेगा तो वह पत्थर आदि सोने में परिवर्तित हो जायेगा।

अपने गुरुदेव श्री मत्स्येन्द्रनाथ को भ्रमित समझकर अपनी इस विपुल शक्ति का प्रयोगात्मा रूप श्रीगोरखनाथ जी ने तत्काल करके दिखा दिया।

उपनिषदों में योगी की अद्भुत शक्ति का वर्णन किया गया है। जैसे:–

अचिन्त्य शक्तिमान्योगी नाना रूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रिय:।।
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुत:।।
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढ़ास्तु तत्रासौ मृत एव वै।।
कर्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन् मुक्त: सदा सदा स्वच्छ: सर्वदोषविवर्जित:।।

अर्थात्–जिस योगी ने सम्प्रज्ञात योग की भूमिकाओं में संयम करते हुए अपने मन पर पूर्णरूपेण वशीकार प्राप्त कर लिया है, उसकी शक्ति अचिंत्य हो जाती है। वह चाहे तो हजारों शरीर एक साथ धारण कर ले और फिर उनका संहार भी कर ले। जिसने अपने आपको हठयोग की साधना के द्वारा मार लिया है वह योगी अमर हो जाता है। जहाँ पर संसार के प्राणियों की मृत्यु होती है, वहाँ पर वह अमर रहता है और जहाँ जिन विषयों के अन्दर ये लोग जिन्दा रहते हैं उन विषयों को वह छूता तक नहीं। उन सब में वह मृत की तरह रहता है। क्योंकि इसने अपने आप पर पूर्ण वशीकार प्राप्त कर लिया है, इसलिए इच्छारूप हो करके तीनों लोकों में जहाँ–तहाँ विचरा करता है। उपरोक्त श्लोक के अन्दर योगी की शक्ति का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार से जगदात्मा अखिल लोक पावन भगवान **श्रीकृष्ण** जी ने श्रीमद्भागवत के 11 वें स्कन्ध में उद्धव को उपदेश देते हुए अपनी **अष्टादश** सिद्धियों का वर्णन किया है जो अन्तरमुखीवृत्ति वाले को ही धारणा, ध्यान के प्रभाव से प्रगट हुआ करती है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण से उद्धव ने प्रश्न किया:–

कया धारणया कास्वित कथंस्वित सिद्धिरच्युत।
कतिवा सिद्धयो ब्रूहियोगिनां सिद्धिदो भवान्।।

अर्थात्– सर्वशक्तिवान् सिद्धियाँ कितने प्रकार की है और किस धारणा से वह किस प्रकार प्राप्त की जाती हैं? आप योगियों को सिद्धियाँ देने वाले हैं। कृपा करके उन सिद्धियों के नाम व गुण बताइये। इसके उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अष्टादश सिद्धियों का स्वरूप बतलाया जिनमें से आठ प्रमुख हैं, जो इस प्रकार है:–

सिद्धियो अष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगै:।
तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुण हेतव:।।

अर्थात्–ध्यान योग के वेत्ता योगीराज लोगों ने सिद्धियाँ अठारह प्रकार की बतलाई है जिनमें से आठ मुझ से सम्बन्ध रखने वाली हैं और दश गुणों से पैदा होने वाली हैं।

आठ महासिद्धियाँ जो प्रकृति के विश्लेषणों पर अधिकार प्राप्त करने वाले योगियों को भगवान के निज रूप में तद्रूपता प्राप्त करने पर होती हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है:–

आठ महासिद्धियाँ

अणिमा, महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियै:।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्ति प्रेरणमीशिता।।
गुणेष्वसंगो वशिता यत्कमस्तदवस्यति।
एता में सिद्धय: सौम्य अष्टौचोत्पत्तिकामता:।।

अर्थात्–अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, यत्रकामावसायित्व, ये आठ महासिद्धियाँ हैं, इनके स्वरूप को इस प्रकार समझ लेना चाहिए।

अणिमा– योगी का अणु के समान बहुत ही सूक्ष्म हो जाना।

महिमा– बड़ा हो जाना।

लधिंमा– रूई के समान हल्का हो जाना।

प्राप्ति– सब प्रकार की पहुँच अर्थात् योगी चाहे तो अपनी अंगुली के अग्रभाग से पृथ्वी पर से चन्द्रमा को छू सकता है।

प्राकाम्य– यदृच्छागति, अर्थात् जिस प्रकार सर्वसाधारण मनुष्य पानी में अनायास प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार योगी चाहे तो पृथ्वी में प्रवेश कर जाता है।

वशित्व– प्राणीमात्र पर पूर्ण वशीकार प्राप्त कर लेना।

ईशत्रित्व– हुकूमत करना या मालिक होना।

यत्रकामावसायित्व– सत्य संकल्प होना जो विचार मन में आ जाये उसका ही यथार्थपूर्वक होना।

ये योगियों की आठ महासिद्धियाँ हैं जो दृढ़तर अभ्यास करने वाले योगीराज लोगों को ही प्राप्त हुआ करती हैं। समय–समय पर योगियों के इतिहास में इन्हीं सभी सिद्धियों का आविर्भाव पूर्णरूपेण दिखलायी पड़ता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि अष्ट महासिद्धियाँ हर समय वास किया करती हैं और उनके जीवन में स्थान–स्थान पर उनकी चमत्कारिक घटनाओं में यह बिल्कुल स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कई स्थानों पर वह अन्तर्ध्यान हुए, रासलीला के प्रकरण में गोपियों के अन्दर अभिमान पैदा हो जाने पर तत्काल वहाँ के वहाँ ही अन्तर्ध्यान हो जाना, उनके योग–ऐश्वर्य का परिचायक है। तृणावर्त को मारने के समय रूई के मानिन्द हल्का होकर उसके साथ आकाश में जाना और फिर उसके बाद पत्थर के समान भारी होकर जमीन पर आना – इसमें उनके लघुत्व व गुरूत्व का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। इसी प्रकार से पाताल आदि लोकों से अपने गुरुदेव के मरे हुए पुत्रों को लाकर देना, यह उनका स्पष्ट प्राकाम्य का प्रभाव है। ईशत्व, वशित्व तो उनके जीवन में प्रतिक्षण बना ही रहता है। इसके अतिरिक्त गुण धर्मों से पैदा होने वाली दस उप सिद्धियों का वर्णन भी भगवान ने अपने मुखारविन्द से किया है। वह इस प्रकार है:–

दस उप–सिद्धियाँ

अनूर्मिमत्वं देहेऽस्मिन दूर श्रवण दर्शनम्।
मनोजवः कामरूपं **परकाय** प्रवेशनम्।।
स्वच्छन्द **मृत्युर्देवानां सहक्रीड़ानुदर्शनम्।**
यथा संकल्प स सिद्धि राज्ञा प्रतिहतागतिः।।
त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता।
अग्न्यर्काम्बुविषादीना प्रतिष्टम्भोऽपराजयः।।

अनूर्मिमत्व–भूख, प्यास, आदि के वेगों का न होना।

दूरश्रवण दूर दर्शन–दूर की बातें सुनना व दूर तक देखना।

मनोजवित्व–मन के वेग वाला बनना। एक योगी का मन जहाँ जाय तत्काल उसका शरीर वहीं पहुँच जाय। इसको मनोजविता कहते हैं। अर्थात् मन के वेग से पहुँचना। जिस प्रकार हस्तिनापुर में द्रोपदी के चिन्तन मात्र से भगवान श्री कृष्ण का द्वारिका से पहुँचना व उनके वस्त्र को बढ़ाना। दुर्वासा के बन में जाने पर उनके आतिथ्य के लिए द्रोपदी द्वारा श्री कृष्ण का चिन्तन करना और तत्काल श्री कृष्ण का वहाँ पहुँच जाना। ये सब मनोजविता के ही उदाहरण हैं।

कामरूप–जैसा मन चाहे उसी प्रकार का रूप धारण कर लेना।

परकाय प्रवेशनम्–दूसरे के शरीर में घुस जाना, जिस प्रकार से मण्डन मिश्र के साथ श्री नगर में शास्त्रार्थ करने पर विद्याधरी से परास्त होकर श्री शंकराचार्य जी छः महीने का अवसर लेकर किसी राजा के शरीर में जाकर घुस गये थे और छः महीने के बाद विद्याधारी को परास्त किया।

स्वच्छन्द मृत्यु–अपनी इच्छानुसार मृत्यु ग्रहण करना अर्थात् जब तक योगी चाहे जीवित रहे।

देवानांसहक्रीडादर्शनम्–देवताओं की अप्सराओं के साथ होने वाली हास विलास वाली क्रीडाओं को अनावरण देखना। इनका सम्बन्ध सतोगुण से है। इनके अतिरिक्त:–

त्रिकालज्ञत्व–अर्थात् तीन काल की बातों को जानना।

अद्वन्द–सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि द्वन्दों के वश में न होना।

परचित्ताद्यभिज्ञता–दूसरे के चित्त की बातों को जानना।

अग्न्यर्काम्बु विषादीनां प्रतिष्टम्भः–अग्नि, सूर्य, जल और विष आदि का योगियों के शरीर पर कोई भी प्रभाव न पड़ना।

अपराजय–किसी से पराजित न होना।

ये पाँचों सिद्धियाँ भी योगी को अपने योग ध्यान से प्राप्त होती हैं। जितनी सिद्धियों का वर्णन योगदर्शन में श्रीमदभागवत में, उपनिषदों में या योग वसिष्ठ आदि में मिलता है, वे सब उनका ऐश्वर्य है। मेरे श्री गुरुदेव जी महाराज अपने मुखारविन्द से हिमालय के सिद्धों की आश्चर्यजनक कथायें सुनाया करते थे। जिनको सुनकर आजकल का मनुष्य आश्चर्यचकित हो जायेगा और गप्प कह कर छोड़ देगा। किन्तु बात ऐसी नहीं है। मेरे श्री गुरुदेव जी ने एक बार जिक्र करते हुए बतलाया कि हिमालय के अन्दर इस प्रकार के उच्चकोटि के महात्मा हैं जिन्होंने अपने रोम कूपों से हजारों स्त्री पुरुषों की रचना कर ली। बड़े–बड़े महल व बंगले बनवा लिये, मालूम पड़ने लगा यह एक नया लोक बसा है, किन्तु उन्होंने जब इस निर्मित सृष्टि का संहार करना चाहा तो एक बार श्वासों का आकर्षण किया और वह सारी शक्ति उन्हीं में विलीन हो गई। यदि आधुनिक समय में इन सब बातों को लोगों के मध्य प्रचारार्थ बताया जाय तो लोग बिल्कुल

विश्वास नहीं करेंगे, किन्तु बात इस प्रकार की नहीं है। हमारा पुराना इतिहास इस प्रकार के उपाख्यानों की पूरी–पूरी गवाही देता है। त्रिशंकु का इतिहास आप लोगों ने पढ़ा ही होगा, महाराज त्रिशंकु के निमित्त विश्वामित्र का नए स्वर्ग की रचना करना – इस प्रकार की घटनाओं का ज्वलंत उदाहरण है। इसके अतिरिक्त रामायण में श्री सीता जी के द्वारा श्री राम की बारात का अनुपम प्रबन्ध करना। जनकपुर में भगवान श्री राम चन्द्र जी की बारात के पधारने पर अपनी योग शक्ति से सिद्धियों को लाकर जो आतिथ्य किया वह भी सीता जी की योग शक्ति का पूर्ण परिचायक है। सीता जी ने जिस समय देखा कि बारात शहर में आ गई है और उनके प्राणपति श्री राम चन्द्र जी का पूर्ण आतिथ्य नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में स्वयं सीता जी ने मन में संकल्प करके सिद्धियों को बुलाया और उचित आतिथ्य का आदेश दिया:–

जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रकटि जनाई।।
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई।।
सिधि सब सिय आयस। अकनि गई जहाँ जनवास।।
लिए सम्पदा सकल सुख। सुर पुर भोग विलास।।
निज निज वास विलोकि बाराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती।।
विभव भेद कछु कोई न जाना। सकल जनक कर करहि बखाना।।
सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हेतु मरम पहिचानी।।
पितु आगमन सुनत दोई भाई। हृदय न अति आनन्द अमाई।।

अर्थात्–जिस समय श्री सीता जी ने अपने नगर में आई हुई बारात को देखा तो हृदय में स्मरण करके सब सिद्धियों को बुलाया और महाराज दशरथ के आतिथ्य सत्कार के लिये उनको प्रेरित किया। सिद्धियाँ श्री सीता जी के आशीर्वाद को प्राप्त करके देवताओं के नगर में होने वाली सब प्रकार की सम्पत्ति व भोग बिलास की सामग्री को लेकर के जहाँ जनवासा था वहाँ गयीं और बड़ा ही अद्भुत वैभव पल में प्रगट कर दिया। बाराती लोग अपने आवासों को देखकर बड़े आश्चर्य चकित थे, किन्तु उस सम्पत्ति के मूल कारण को कोई नहीं समझ सका। सब लोग यही समझते थे कि यह सारा ऐश्वर्य महाराज जनक का ही है, किन्तु एक मात्र श्री रामचन्द्र जी ने इस बात को जाना:–

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी।।

सीता जी की महिमा को केवल मात्र श्री रघुनाथ जी ने ही जाना और वह अपनी शक्ति के इस प्रभाव को देखकर बड़े हर्षित हुए। सीता उनकी अपनी आत्म शक्ति थी। इसी प्रकार से श्री भरत जी के भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचने पर मुनि की योग शक्ति के प्रभाव को दिखलाने वाली अद्भुत घटना को गुसाईं तुलसीदास जी ने अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है:–

राम विरह व्याकुल भरत, सानुज सहित समाज।
पहुँनाई करि हरहुँ श्रम, कहा मुदित मुनिराज।।
रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी, बड़ भागिनी आपुहि अनुमानी।...

अर्थात्–भरत जी श्री राम जी को लौटाने के लिए वन में आया देख करके सेना सहित भरत जी के आतिथ्य के लिये भरद्वाज ऋषि ने अपने संकल्प से सिद्धियों को बुलाकर आज्ञा दी कि भरत जी का आतिथ्य करके इनकी रास्ते की थकान को दूर करो। मुनिराज के इन वचनों को सुनकर रिद्धि–सिद्धियों ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर और श्री भरत के आतिथ्य की सेवा मिलने पर अपने आपको बड़भागिनी माना। सिद्धियों ने सोचा कि मुनिराज के चरणों में प्रणाम करके श्री भरत के लिए हम वह काम करें जिसको देखकर देवी देवता सब आश्चर्य में पड़ जायें। यह विचार कर उन्होंने सुन्दर–सुन्दर रहने के लिए मकान बनाये जिनको देखकर देवता लोग भी आश्चर्य चकित रह गये। इसके अतिरिक्त उन मकानों में भोग सामग्री को देखकर के देवताओं की अभिलाषायें भी जाग उठीं। बहुत दास दासी बनाये जो मनुष्य को स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। वह सब सुख सिद्धियों ने मुनि की आज्ञा मानकर पल भर में कर दिया और भरत जी व उनकी सेना के लिए उचित स्थान दिये। इस वैभव को देखकर के देवी देवता, वरूण आदि लोकपाल सब हैरान थे, वह वैभव जो मुनिराज ने अपने संकल्प से किया –आसन, सुन्दर सेज, अच्छे–अच्छे कपड़े, ऊपर लगाने के चन्दोबे, बड़े सुन्दर वन–वाटिकाएँ, सुन्दर–सुन्दर पक्षी, मृग, बड़ी सुगन्धि वाले फूल, अमृत के समान स्वादिष्ट जल वाले कुआँ, तालाब आदि निर्मल जलाशय, अमृत के समान खाने पीने के पदार्थ और इसके अतिरिक्त सभी के डेरों में कामधेनु, कल्प वृक्ष आदि सम्पति बनाई, बसन्त ऋतु का सुहावना समीर वहाँ चलने लगा। यह सारा का सारा प्रभाव मुनि भरद्वाज की अचिंत्य योग शक्ति का था। इसी प्रकार के पुराने इतिहास में सैकड़ों उपाख्यान इस प्रकार के हैं जिनको पढ़ करके भारतवर्ष में होने वाले पुराने योगियों की अचिंत्य योग शक्ति को देखकर मन उमंगित हो उठता है। किन्तु हम अपने महापुरुषों की इस प्रकार की दिव्य घटनाओं को देखकर व सुनकर समझ भी नहीं पाते कि ऐसा हुआ भी था या नहीं। यह तो बहुत पुरानी बात है। अब भी भारतवर्ष में इस प्रकार के महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहता है जिन्होंने समय–समय पर अपनी योग शक्ति का परिचय दिया है।

संत ज्ञानेश्वर

महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाले व सन्यास आश्रम से बदलकर पुनः गृहस्थ में आने वाले एक विप्र की सन्तान थे। उनके जीवन में अलौकिक और आश्चर्यप्रद घटनायें घटीं। ज्ञानेश्वर के चरित्र की धूम जिस समय महाराष्ट्र में मची तो उनके समकालीन 1400 वर्षीय योगी चांगदेव ने बड़ा आश्चर्य माना और वह शेर पर सवार होकर संत ज्ञानेश्वर से मिलने चले। उनकी बहिन मुक्ताबाई ने 14 वर्षीय अपने भाई ज्ञानेश्वर से कहा कि

'भाई ! योगी चांगदेव जहरीले सर्पो का चाबुक हाथ में लेकर और खूँखार शेर पर चढ़कर तुमसे मिलने आ रहे हैं।' उस समय ज्ञानेश्वर जी एक कच्ची दीवार पर बैठे हुए थे। उन्होंने अपनी बहिन को आश्वासन दिया और कहा 'मुक्ता चिन्ता मत करो, अपने पास शेर तो नहीं है पर हमारी यह दीवार ही उनके आतिथ्य के लिए आगे बढ़ेगी।' संत ज्ञानेश्वर के इतना संकल्प करने पर दीवार आगे चलने लगी जिसको देखकर सभी लोगों ने आश्चर्य माना और योगी चांगदेव के आश्चर्य का तो ठिकाना ही नहीं रहा। 14 वर्षीय बालक और 1400 वर्षीय योगीराज का अद्‌भुत मिलन हुआ। योगी चांगदेव ने समझ लिया कि यही मेरे गुरुदेव हो सकते हैं और मुझ पर शक्तिपात करके मेरा आत्मोत्थान करायेंगे। अवसर पाकर 1400 वर्षीय योगी ने 14 वर्षीय बाल योगी ज्ञानेश्वर जी की चरण शरण ग्रहण की और अपने आप को कृतार्थ किया। आजकल के इस घोर कलिकाल में भी योगियों की चमत्कारिक घटनायें समय–समय पर घटित होती रहती है।

योगदा सोसाइटी के प्रवर्तक
महाशय लहड़ी

जेको पब्लिशिंग हाउस, महात्मा गाँधी रोड, बम्बई, से अंग्रेजी में एक पुस्तक निकली जिसका नाम 'ऑटोबायोग्राफी ऑफ़ योगी' – योगानन्द कृत। (Autobiography of Yogi by Yoganand Ji)। इस पुस्तक को पढ़ने वाले लोग श्री महाशय लहड़ी की आत्मकथा को पढ़कर आश्चर्य में पड़ जायेंगे। महाशय श्यामचरण लहड़ी बनारस में निवास करते थे और वे सरकारी कर्मचारी थे। एक बार उनको किसी सरकारी काम से रानीखेत जाने का अवसर हुआ। रानीखेत पहुँचने पर उनके मन के अन्दर धारणा बनी कि वह जंगलों का भ्रमण करें। अपनी इस धारणा के अनुसार जिस समय वह वन में गये तो उनको एक आवाज सुनाई दी कि लहड़ी आओ तुम्हें गुरुदेव याद कर रहे हैं। तुम बहुत दिन के बाद आ रहे हो, लगभग 32 साल से हम तुम्हारे आसन को सम्हाले हुए हैं। महाशय लहड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़े तो उनको तपस्वी साधु दिखायी दिये। लहड़ी का मन उन दोनों महात्माओं की ओर स्वभावतः आकर्षित होता जा रहा था। लहड़ी यह विचार कर रहे थे कि ये दोनों साधु मेरे अपने हैं। मैं इनका हूँ। उनको ऐसा आभासित हुआ कि जिस प्रकार कोई मृग अपनी मृगों की टोली से अकेला छूट जाये और बाद इधर–उधर घूमघाम करके अपने उस बिछुड़ी टोली में मिल जाये। जो हर्ष मृग को हुआ करता है, वह हर्ष महाशय श्री श्यामचारण लहड़ी के मन में पूर्णरूपेण भर गया। श्यामचरण लहड़ी ने आगे बढ़कर अपने पिछले जन्म से सुरक्षित रखे आने वाले आसन को देखा, उनको पहचान हुई कि यह आसन मेरा ही होगा। वहाँ खड़े श्री गुरुदेव के दर्शन की तीव्र लालसा मन में पैदा हुई और अपने गुरु भाइयों से कहा कि 'भाई मुझे गुरुदेव के दर्शन कराओ।' दोनों महात्मा लहड़ी महाशय को एक गुफा में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने पूर्व जन्म के गुरुदेव के दर्शन किये। गुरुदेव लहड़ी को देखकर हँसे और कहा कि 'लहड़ी तुम रानीखेत में स्थानान्तरित होकर नहीं आये हो, प्रत्युत चार दिन के लिए तुम्हें यहाँ बुलाया गया है। अभी चार दिन के बाद तुम्हारे ऑफिसर तुम्हें तार देकर बुला

लेंगे। अब तुम दीक्षा प्राप्त करो।' उस गुफा में खड़े महाशय लहड़ी के मन में विचार घूमने लगा कि मैं अपने इस प्यारे गुरुदेव का पूजन सोने के मन्दिर में बिठाकर करूँ; किन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है? करोड़ों, अरबों का सोना कहाँ से आये? महाशय लहड़ी के मन में यह धारणा घूम ही रही थी कि उनके गुरुदेव उसके मन के भावों को तत्काल जान गये और कहा — 'बेटा लहड़ी तुम स्वर्ण मन्दिर में बैठकर दीक्षा लेना चाहते हो? अच्छा ऐसा ही हो जाता है। तुम दीक्षा के लिए तैयार हो जाओ।' श्री गुरुदेव के मुख से इस प्रकार के वचन निकल जाने के बाद, महाशय लहड़ी ने देखा कि वहाँ रत्नों से जड़ित बड़ा भारी प्रकाशमय स्वर्ण मन्दिर स्वत: ही तैयार हो गया। गुरुदेव ने आज्ञा दी — 'अच्छा लहड़ी तुम इसमें चले जाओ और इसमें बैठकर हमारा पूजन करो।' महाशय लहड़ी ने उस स्वर्ण मन्दिर में बैठकर अपने गुरुदेव का पूजन किया और उच्चतम आध्यात्म को प्राप्त किया। श्री गुरुदेव ने एकबार में ही उनके सिर पर हाथ रखा और लहड़ी को सिद्धि–शक्तियों का भण्डार बना दिया। महाशय लहड़ी ठीक चार दिन वहाँ रहे। चार दिन के बाद अपने आफीसरों के बुलाने पर पुन: यथास्थान लौट आये।

उसके बाद उनके दिव्य अनुभव दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। और थोड़े समय के बाद ही वह पूर्ण योगी बन गये। उन्होंने भारतवर्ष तथा विदेश में योग का बड़ा प्रचार किया। ब्रह्मचारी योगानन्द और उनकी शिष्या बहिन दया महाशय लहड़ी के ही कृपापात्र है। बहिन दया आजकल भी भारतवर्ष में स्थान–स्थान पर 'योगदा सोसाइटी' चला रही हैं।

कानपुर में घटने वाली एक योगी की शक्ति की अद्‌भुत घटना

नरकंकाल में प्राण संचार

18 मई 1961 को आगरा से प्रकाशित होने वाले दैनिक अखबार में एक घटना प्रकाशित हुई जिसको उसने 'स्वतंत्र भारत' अखबार से प्राप्त किया। कानपुर में गंगा के किनारे स्थित अग्रसेन व्यायामशाला में श्री दण्डी स्वामी विद्याश्रमी ने योग शक्ति का अद्‌भुत प्रदर्शन किया। जिसमें उन्होंने एक नर कंकाल (अस्थिपंजर) को नंगा करके उसमें प्राणसंचार किया और थोड़ी देर में वह मनुष्य आकृति के रूप में लोगों के सामने जिन्दा होकर बैठ गया, क्योंकि वह क्रिया दण्डी ने पर्दे के अन्दर बैठकर की। इसलिए लोगों के मन में शंकायें बनी रहीं। उनमें से प्रधान आलोचक श्री भूदेव शर्मा विद्यालंकार थे। शंका निवृत्ति के लिए कानपुर के सभी सम्भ्रांत व्यक्तियों ने श्री स्वामी जी से पुन: प्रदर्शन की माँग की। स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और कुछ समय बाद उसी प्रकार से पुन: प्रदर्शन किया गया। भूदेव शर्मा विद्यालंकार के द्वारा ही किसी व्यक्ति का अस्थि पंजर मगाया गया और उसमें प्राणसंचार करके बहुत जल्दी ही मनुष्य रूप में परिवर्तित कर दिया गया। कानपुर के भूतपूर्व सिविल सर्जन श्री दीक्षित ने उस अस्थि पंजर से बने हुए मनुष्य की नाड़ी देखी और पूरा परीक्षण किया। बाद में उन्होंने सबके सामने परिणाम घोषित कर दिया कि अस्थि पंजर बना हुआ वह व्यक्ति बिल्कुल जिन्दा मौजूद है। कोई भी चाहे उसका परीक्षण कर सकता है। भूदेव शर्मा विद्यालंकार ने उसको मनुष्य रूप में

पूर्णरूपेण ठीक देखा। ठीक इसी प्रकार की एक घटना कुछ साल पहले मिर्जापुर के एक छोटे से गाँव बरैनी में घटित हुई थी। वहाँ पर भी एक महात्मा ने एक अस्थि पंजर मँगाकर उसमें प्राणसंचार किया और वह मनुष्य जिन्दा हो गया; किन्तु उसका परिवर्तन उस स्थिति में हुआ जिसमें वह मरा था अर्थात् तीव्र बुखार की हालत में ही वह सबके देखने में आया। अस्थि पंजर में प्राण संचार करने वाले महात्मा से लोगों ने पूछा कि यह कितने दिन जिंदा रहेगा? उन्होंने कहा कि यह अधिक से अधिक आठ रोज ही जिन्दा रह पायेगा। उसके बाद यह जिन्दा नहीं रह सकेगा, क्योंकि यह अपनी आयु भोग चुका है। इस प्रकार की घटनायें भारतवर्ष में समय–समय पर घटित होती रहती हैं। जिन योगीराज लोगों की अद्भुत घटनाओं का स्थान–स्थान पर हमारे इतिहास में वर्णन मिलता है, उस प्रकार के महापुरुष आज कलिकाल में भी मौजूद हैं।

इसलिए योगी की शक्ति अचिन्त्य शक्ति है। ये लोग 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम' की ताकत वाले होते हैं अर्थात् काम कर दें, बिगड़ी को बना दें, और बनी को बिगाड़ दें और बिगड़ी को फिर बना दें।

पदयात्रा सवाँई धाम की !

आगरा। योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के प्राकट्योत्सव पर लगातार सातवें वर्ष योग साधना केन्द्र पंजाबी बाग (दयालबाग) के श्रद्धालुओं ने केन्द्र पर पूजा अर्चना व आरती करने के बाद प्रातः 4 बजे श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर) के लिए पद यात्रा प्रारम्भ की। इन पदयात्रियों में पुरुष, महिलाएँ व बच्चे शमिल थे। जिनकी संख्या 16 थी। शेष लगभग एक सौ लोगों ने अपने–अपने वाहनों से श्री सिद्धगुफा जाकर पूजन–अर्चन किया।

पदयात्रियों में अध्यक्ष बलबीर सिंह एड., गुरुप्रसाद झा, वीर पाल सिंह चाहर, विजय सिंह राठौर, ओमवीर चौहान एड., हन्नी हर्षप्रताप, संजय राठौर, श्यामवीर सिंह, नितिन प्रताप जादौन, गोपाल शर्मा, अभयपाल सिंह, शुभम, श्रीमती राजकुमारी, श्रीमती चाहर, श्रीमती सुनीता झा एवं गिरिजा चन्देल थीं।

उल्लेखनीय है कि योग साधना केन्द्र, पंजाबी बाग, दयालबाग (आगरा) के ये साधक प्रतिवर्ष पदयात्रा करके सवाँई धाम पहुँचते हैं और अखण्ड ब्रह्माण्डनायक प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगयोगेश्वर अनंतश्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पूजन–अर्चन कर प्रभु प्रसाद ग्रहण करते हैं।

संपादकीय

श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव

आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

गुरु शब्द संस्कृत के ''गृ'' शब्दे तथा ''गृ'' निगरणे इन दो धातुओं से व्युत्पन्न होता है। गृणातिउपदिशति धर्मम् इति गुरुः – जो योग धर्म का उपदेश करे वह गुरु है। अथवा 'गिरत्यज्ञानमिति गुरुः' जो अज्ञान को निगल जावे, समाप्त कर दे वह गुरु है। अथवा **गीर्यतेः स्तूयते देवगन्धर्वादि भिरिति गुरुः**। अर्थात् देवगन्धर्वादि ऋषि मुनि भी जिनकी नित्य स्तुति करते हैं – वही गुरु है। आषाढ़ माह के पूर्णमासि को प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा अथवा व्यास पूजा के रूप में मनाया जाता है।

भारतीय संस्कृति में अनादि काल से ही गुरु पूजा की परम्परा है। भगवान राम और कृष्ण ने भी संसार में अवतरित होकर गुरु परम्परा को जीवित रखने के लिए ही गुरु को मान कर उन्हें सब प्रकार से महत्ता व सम्मान दिया है। परम्परा उस वस्तु का नाम है जो अनादि काल से ज्ञान की धारा की भांति बहती चली आ रही हो। परात्पर ब्रह्म ही गुरु शब्द का वाचक है। योग दर्शन में भगवान् पतंजलि महर्षि ने गुरु शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की है– **सः पूर्वेषामपि गुरः कालेनानवच्छेदात्**'' अर्थात् जो सृष्टि के आदि में हुए ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों को भी जो ज्ञान देते हैं, मार्ग दिखलाते हैं, वह तत्व ही गुरु तत्व है। वह तत्व काल की सीमा से बाधित नहीं है। इस प्रकार पतंजलि जी ने गुरु शब्द की विस्तृत व्याख्या की है।

पतंजलि जी के अनुसार परात्पर ब्रह्म सत्ता का नाम ही गुरु है। गुरु तत्व है तथा सत्ता है। तत्व उसे कहते हैं जो कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता सृष्टि के आदि काल से ही ईश्वर अज्ञानी जीवों को ज्ञान देने तथा संकटों से त्राण देने तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए सगुण रूप में आकर अवतार लिया करते हैं। यही सनातन आर्य की धारणा है।

भारतीय योगियों, महर्षियों एवं भक्तों ने गुरु महिमा का अत्यन्त मुक्त कण्ठ से गुणगान किया है। संत कबीर जैसे निर्गुण योगी भी गुरु की अनन्त महिमा का वर्णन करते नहीं अघाते हैं। गुरु के अनन्त उपकार को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता और शिष्य कभी भी उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता। इस संसार में शिष्य के परम कल्याण की कामना करने वाला एवं प्यार देने वाला दूसरा कोई नहीं हो सकता।

किसी गुरु भक्त ने बहुत ही ठीक कहा है–

पिता से माता सौ गुणा, करती सूत सौं प्यार।
माता से हरि सौ गुणा, हरि से गुरु सौ बार।।

इस प्रकार हरि से भी सौ गुणा प्यार देने वाला गुरुदेव ही होते हैं। इस संसार में मनुष्य

को जन्म देकर शरीर देने वाले माता–पिता है किंतु यह शरीर मरणधर्मा होता है इस शरीर की मृत्यु हो जाती है। एक दूसरे शरीर को जन्म गुरुदेव देते हैं, जिसको अध्यात्म जन्म कहा जाता है। जिस जन्म को लेने के बाद फिर जन्म–मृत्यु नहीं होती है।

इस प्रकार से आध्यात्म जगत (शरीर) के माता–पिता गुरुदेव होते हैं। इस अध्यात्म शरीर को गुरुदेव योग विद्या से दिव्य बना देते हैं। जिससे जीव मुक्ति–भाजन बन जाता है। गुरुगीता में भगवती पार्वति को उपदेश देते हुए भगवान सदाशिव कहते हैं कि हे पार्वति! सद्शिष्य को यदि जीवन–मरण से मुक्त होना है तो वह गुरुदेव की मूर्ति का कभी भी विस्मरण न करे। इसलिए कहा है–

''गुरु लोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि भावयेत्।''

यदि शिष्य कर्मबन्धन एवं जन्मबन्धन से मुक्त होना चाहता है तो उसको अपने चित्त से कभी भी गुरुमूर्ति का लोप नहीं करना चाहिए।

गुरु पूर्णिमा का उत्सव शिष्य के लिए परम् महोत्सव है। जिसे व्यास पूजा भी कहा गया है। व्यास शब्द का अर्थ है– विस्तार। जो व्यक्ति ज्ञान का भण्डार है, ज्ञान विज्ञान के दिव्य ज्ञान से युक्त है उसे ही व्यास कहते हैं। जो पूर्ण है वही गुरु है। जो गरिमामय है जिनमें गुरुत्वाकर्षण है, संस्कारी जीवों को अपनी ओर आकृष्ट कर उनके संस्कारों को क्षय करने की क्षमता हो, सर्व समर्थ हो वही गुरु कहलाता है। शास्त्रों की भाषा में इस सत्ता का नाम ब्रह्म कहा गया है। सर्वगत् होने से यह तत्व सब को अपने में समेट लेता है। गीता ने इस तत्व के लिए कहा है– **''सर्वम् समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः''** जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप हो श्रुति ने **''रसो वै सः''** कह कर परमात्म तत्व को रसरूप माना है। रसों का मूल स्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा मे अमृत बनता है, वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। वही गुरु है।

शिष्य के लिए पूर्ण सद्गुरु का सानिध्य एवं ध्यान दिव्य दृष्टि को प्रदान करने वाला है। जैसा कि संत तुलसी दास जी की पंक्तियां हैं–

''श्री गुरुपद् नख मनि गण ज्योती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।'' अर्थात् सिद्धगुरु के पदनख से निकलने वाली दिव्य ज्योति का ध्यान करने से दिव्य दृष्टि का उदय हो जाता है। जिसके उदय होने से मोह एवं अज्ञान का दलन् हो जाता है। नाश हो जाता है। जिनके हृदय में ऐसी दिव्य दृष्टि का उदय हो जाता है, उन्मीलन हो जावे वह बहुत धन्य एवं भाग्यशाली जीव होते हैं।

सद्गुरु के प्रसन्नता मात्र से भोग और योग की प्राप्ति हो जाती है। किंतु गुरुदेव की प्रसन्नता प्राप्त करना दुष्कर कार्य है। शिष्य अपने अस्तित्व को गुरुदेव में विलीन कर दे यह अत्यधिक कठिन कार्य है। शिष्य अपने अहंकार, राग, द्वेष तथा अन्य दुरवृत्तियों के कारण गुरुदेव के पास अधिक समय तक टिक नहीं पाता है। जितने दिन तक गुरुदेव मे भक्ति ठीक बनी रहती है तब तक तो उन्नति पाता है। किंतु वृत्तियों के उत्थान पतन के कारण गुरुभक्ति में शिथिलता आ जाया करती है। हमारे गुरुदेव भगवान के कई ऐसे शिष्य साधक हुए हैं जिनको

गुरुदेव की कृपा से कई प्रकार की अनुभूतियां एवं सिद्धियाँ प्राप्त हो गई थी। किंतु कालान्तर में शिष्य की वृत्ति में उदात्तता न रह सकने के कारण शिष्य की मानस शक्ति का ह्रास हो जाया करता है। शिष्य गुरु की दी हुई शक्ति का जब दुरुपयोग करने लग जाता है तो ये सिद्धियाँ लुप्त हो जाया करती हैं। इस कारण से शिष्य की समय के बदलते रूप के अनुसार शक्तियों का प्राकट्य और तिरोभाव हो जाता है। यही कारण है उच्च शक्ति प्राप्त योगी भी किसी समय में गुरु के असन्तुष्ट रहने पर शक्तियों से शून्य हो जाया करता है। सिद्धयोग में सद्गुरु की कृपा से साधक योगी अत्यल्प काल में ऊँची–ऊँची भूमिकाओं के प्राप्त करने के उपरान्त भी शक्ति विहीन होते देखे हैं। किंतु गुरु भक्त शिष्य का पतन नहीं होता है।

शिव संहिता में भगवान सदाशिव ने इस बात को स्पष्ट रूप से बतलाया है कि गुरुदेव के मुखारविन्द से प्राप्त हुई विद्या ही वीर्यवती अथवा फलवती हुआ करती हैं। गुरुपदेश या गुरुआज्ञा के बिना योगाभ्यास में विशेष सफलता नहीं मिला करती है। गुरुआज्ञा एवं गुरुसेवा से युक्त होकर जो योगाभ्यास और ध्यानाभ्यास किया करते हैं वह अभीष्ट फल प्राप्त कर लिया करते हैं। गुरु ही माता–पिता है और देवता है। अतः मन, वाणी एवं कर्म से गुरुदेव की सेवा, आराधना करनी चाहिए। गुरु सेवा से सबकी सेवा हो जाया करती है।

संसार विषय भोगों में आसक्त रहने वाले, ईश्वर तथा शास्त्रों में विश्वास नहीं रखने वाले, गुरु पूजा नहीं करने वाले विविध मतमतान्तरों में तथा सांसारिकता में संलिप्त जनसमुदाय में रूचि रखने वाले व्यर्थ के वाद–विवाद में पड़ने वाले, कठोर वाणी बोलने वाले तथा गुरुदेव को सन्तुष्ट न करने वाले लोगों को योग मार्ग में कभी भी सफलता नहीं प्राप्त होती है। इसलिए कहा गया है कि शिष्य को सदा ही गुरु आज्ञा पालन करते हुए गुरु भक्ति करनी चाहिए।

गुरुगीता में भगवान सदाशिव ने गुरु तत्व को समझाते हुए कहा है– ''नास्ति तत्वं गुरोः परम्।'' अर्थात् गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं है। भगवान सदाशिव ने गुरु को सद्च्चिदानन्द स्वरूप बताया है। तथा वही व्यापक सत्ता है। परमात्मा है। ऐसे गुरुदेव की सब प्रकार से सेवा, आराधना एवं ध्यान करना चाहिए। गुरुदेव ही शिष्य के चित्त की अज्ञान ग्रंथि का भेदन करने वाले होते हैं। बिना उनकी करूणाकृपा एवं संकल्प से यह कार्य नहीं हो सकता। संसार में दूसरी ऐसी कोई शक्ति नहीं जो शिष्य की अज्ञान ग्रंथि का भेदन कर सके। भगवान सदाशिव ने जिस प्रकार के गुरुदेव की बात कही है ऐसे गुरुदेव की साक्षात् मूर्ति तो महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज में ही दिखाई देती है। वही सब प्रकार सर्व समर्थ हैं। वही अपने शिष्यों के अज्ञानान्धकार को दूर करने में सक्षम हैं। कलिकाल में अल्पपुण्य वाले लोगों को भी उनका सानिध्य और चरण कमल का आश्रय सहज मिल जाता है। वह अपनी कृपा से योग की अनाधिकारी को, अधिकारी बनाकर दिव्य स्थिति प्रदान कर दिया करते हैं। ऐसे सिद्ध गुरु के लिए ही सद्च्चिदानन्द भगवान कहा जावे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गुरु पूर्णिमा के इस पावन पर्व पर हमारे सबके प्राणाधार सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के परम् पवित्र चरण कमलों में कोटि–कोटि नमन है।

□□□

भक्ति

स्वामी विवेकानन्द

संसार में जितने धर्म है उनकी उपासना प्रणाली में विभिन्नता होते हुए भी वे वस्तुत: एक ही हैं। किसी-किसी स्थान पर लोग मन्दिरों का निर्माण कर उन्हीं में उपासना करते हैं, कुछ लोग अग्नि की उपासना करते हैं; किसी-किसी स्थान में लोग मूर्ति-पूजा करते हैं तथा कितने ही आदमी ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नही करते। ये सब ठीक है, इन सबमें प्रबल विभिन्नता विद्यमान है, किंतु यदि प्रत्येक धर्म के सार, उनके मूल तथ्य, उनके वास्तविक सत्य के ऊपर विचार कर देखें, तो वे सर्वथा अभिन्न है। इस प्रकार के भी धर्म हैं जो ईश्वरोपासना की आवश्यकता ही नही स्वीकार करते। यही क्या, वे ईश्वर का अस्तित्व भी नहीं मानते। किंतु तुम देखोगे, ये सभी धर्मावलम्बी साधु-महात्माओं की ईश्वर की भाँति उपासना करते हैं। बौद्ध धर्म इस बात का उल्लेखनीय उदाहरण है। भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का आदेश है। सभी जगह इस भक्ति-रूप उपासना का सर्वोपरि प्रभाव देखा जाता है। ज्ञान-लाभ की अपेक्षा भक्ति-लाभ करना सहज है। ज्ञान-लाभ करने में कठिन अभ्यास और अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। शरीर सर्वथा स्वस्थ एवं रोगशून्य न होने से तथा मन सर्वथा विषयों से अनासक्त न होने से योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता, किंतु सभी अवस्थाओं के लोग बड़ी सरलता से भक्ति साधना कर सकते हैं। भक्तिमार्ग के आचार्य शाण्डिल्य ऋषि ने कहा है कि ईश्वर के प्रति अतिशय अनुराग को भक्ति कहते हैं। प्रहलाद ने भी यही बात कही है। यदि किसी व्यक्ति को एक दिन भोजन न मिले तो उसे महाकष्ट होगा। सन्तान की मृत्यु होने पर उसको कैसी यन्त्रणा होती है! जो भगवान के प्रकृत भक्त हैं, उनके भी प्राण भगवान के विरह में इसी प्रकार छटपटाते हैं। भक्ति में यह बड़ा गुण है कि उसके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है और परमेश्वर के प्रति दृढ़ भक्ति होने से केवल उसी के द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। नाम्नामकारि बहुधा **निजसर्वशक्ति:**- 'हे भगवन् तुम्हारे असंख्य नाम हैं और तुम्हारे प्रत्येक नाम में तुम्हारी अनन्त शक्ति वर्तमान है।' और प्रत्येक नाम में गम्भीर अर्थ गर्भित है। तुम्हारे नाम उच्चारण करने के लिए स्थान, काल आदि किसी भी चीज का विचार करना आवश्यक नहीं। हाँ सदा मन में ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और इसके लिए स्थान, काल का विचार नही करना चाहिए।

ईश्वर विभिन्न साधकों के द्वारा विभिन्न नामों में उपासित होते हैं, किंतु यह भेद केवल दृष्टिमात्र का है, वास्तव में कोई भेद नहीं है। कुछ लोग सोचते हैं कि हमारी ही साधना-प्रणाली अधिक कार्यकारी है, और दूसरे अपनी साधनाप्रणाली को ही मुक्ति पाने का अधिक सक्षम उपाय बताते हैं। किंतु यदि दोनों की ही मूल भित्ति का अनुसन्धान किया जाये तो पता चलेगा कि दोनों ही एक हैं। शैव शिव को ही सर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली समझते हैं। वैष्णव विष्णु को ही

सर्वशक्तिमान मानते हैं, देवी के उपासकों के लिए देवी ही जगत में सबसे अधिक शक्तिशालिनी है। प्रत्येक उपासक अपने सिद्धान्त की अपेक्षा और किसी बात का विश्वास ही नहीं करता, किंतु यदि मनुष्य को स्थायी भक्ति की उपलब्धि करनी है तो उसे यह द्वेष–बुद्धि छोड़नी ही होगी। द्वेष भक्ति–पथ में बड़ा बाधक है–जो मनुष्य उसे छोड़ सकेगा, वही ईश्वर को पा सकेगा। तब भी इष्ट–निष्ठा विशेष रूप से आवश्यक है। भक्तश्रेष्ठ हनुमान ने कहा है:

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः।।

–मैं जानता हूँ, जो परमात्मा लक्ष्मीपति है, वे ही जानकीपति हैं, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं।' प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरों से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। समस्त संसार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता, इसका मुख्य कारण यही भावों में विभिन्नता है। ईश्वर करे, संसार कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो संसार का सामंजस्य नष्ट होकर विशृंखलता आ जायेगी। अस्तु, मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल जायें तो उसको उसी के भावानुरूप मार्ग पर अग्रसर करने में सहायक हों, तो वह मनुष्य उन्नति करने में समर्थ होगा। उसको उन्हीं भावों के विकास की साधना करनी होगी। जो व्यक्ति जिस पथ पर चलने की इच्छा करे, उसे उसी पथ पर चलने देना चाहिए; किंतु यदि हम उसे दूसरे मार्ग पर घसीटने का यत्न करेंगे तो वह उसके पास जो कुछ है, उसे भी खो बैठेगा, वह किसी काम का न रह जायेगा। जिस भाँति एक मनुष्य का चेहरा दूसरे के चेहरे से भिन्न होता है, उसी प्रकार एक मनुष्य की प्रकृति दूसरे की प्रकृति से भिन्न होती है। किसी मनुष्य को अपनी प्रकृति के ही अनुसार चलने देने में क्या आपत्ति है? एक नदी एक ओर बहती है–यदि उसके बहाव को ठीक कर नदी को उसी ओर बहाया जाय तो उसकी धारा अधिक तेज हो जायेगी और वेग बढ़ जायगा। किंतु यदि स्वाभाविक प्रवाह की दिशा को बदल कर उसे दूसरी दिशा में प्रवाहित करने का यत्न किया जाय तो तुम यह परिणाम देखोगे कि उसका परिमाण क्षीण हो जायगा और उसका वेग भी कम हो जायेगा। यह जीवन एक बड़े महत्व की चीज है, अतः इसे अपने–अपने भाव के अनुसार ही चलाना चाहिए। भारत में विभिन्न धर्मों में कभी विरोध नहीं था, वरन् प्रत्येक धर्म स्वाधीन भाव से अपना कार्य करता रहा, इसीलिए यहाँ अभी तक प्राकृत धर्मभाव बना है। इस स्थान पर यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि विभिन्न धर्मों में तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य यह विश्वास कर लेता है कि सत्य का मूल मंत्र ही मेरे पास है और जो मनुष्य मुझ जैसा विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है; और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि अमुक व्यक्ति ढोंगी है, क्योंकि अगर वह ऐसा न होता, तो मेरा अनुगमन करता।

यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही धर्म का अवलम्बन करें तो इतने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति क्यों होती? सब लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने के लिए अनेक प्रकार के उद्योग और चेष्टाएं हुईं, किंतु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। तलवार के जोर से जिस स्थान पर

लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने की चेष्टा की गयी, वहाँ भी एक की जगह दस धर्मों की उत्पत्ति हो गयी–इतिहास इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुकूल एक धर्म नहीं हो सकता। क्रिया तथा प्रतिक्रिया इन दो शक्तियों से मनुष्य मननशील हुआ है। यदि इन शक्तियों का प्रयोग मन पर न होता तो मनुष्य कुछ सोच ही न सकता; इतना ही क्यों, वह मनुष्य ही न कहा जा सकता। मनुष्य मननशील प्राणी है, वह मनयुक्त है। 'मन्' धातु से मनुष्य शब्द बनता है, मनुष्य शब्द का अर्थ है मननशील। मननशीलता की शक्ति के लोप हो जाने पर मनुष्य और एक साधारण पशु में कोई अन्तर न रह जायेगा। ऐसे व्यक्ति को देखकर सबके हृदय में घृणा का उद्रेक होगा। ईश्वर करे, भारतवर्ष में कभी ऐसी अवस्था न उत्पन्न हो। अतः मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व में अनेकत्व की आवश्यकता है। सभी विषयों में एक अनेकत्व या विविधता की आवश्यकता है, कारण जितने दिन यह अनेकत्व रहेगा, उतने ही दिन जगत का अस्तित्व भी रहेगा। अवश्य ही अनेकत्व या विविधता कहने से केवल यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि उनमें छोटे–बड़े का अन्तर है। परंतु यदि सब जीवन के अपने–अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करते, तब भी विविधता वैसे ही बनी रहती। सभी धर्मों में अच्छे–अच्छे लोग हैं, इसलिए सभी धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अतएव किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नहीं।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है– जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे, क्या उस धर्म के प्रति भी सम्मान दिखाना होगा? अवश्य ही इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है? ऐसे धर्म को जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है, कारण उससे लोगों का अमंगल ही होगा। नैतिकता के ऊपर ही सब धर्मों की भित्ति प्रतिष्ठित है, सदाचार को धर्म की अपेक्षा भी उच्च स्थान देना होगा। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि आचार का अर्थ बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि से है। जल तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त वस्तुओं के प्रयोग से शरीर–शुद्धि हो सकती है, आभ्यान्तर शुद्धि के लिए मिथ्या भाषण, सुरापान एवं अन्य गर्हित कार्यों का त्याग करना होगा। साथ ही परोपकार भी करना होगा। केवल मद्यपान, चोरी, जुआ, झूठ बोलना आदि असत् कार्यों के त्याग से ही काम न चलेगा। इतना तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इतना करने से मनुष्य किसी प्रशंसा का पात्र न हो सकेगा। अपने कर्तव्य–पालन के साथ–साथ दूसरों का भी अवश्य कल्याण करो।

अब मैं भोजन के नियम के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस समय भोजन की समस्त प्राचीन विधियों का लोप हो गया है। लोगों में एक यही धारणा विद्यमान है कि 'इसके साथ मत खाओ, उसके साथ मत खाओ।' सैकड़ों वर्ष पूर्व भोजन सम्बन्धी' जो सुन्दर नियम थे, उनमें आज केवल छुआछूत का नियम ही बचा है। शास्त्र में भोजन के तीन प्रकार के दोष लिखे हैं– 1. जाति दोष– जो खाद्य पदार्थ स्वभाव से ही अशुद्ध हैं, जैसे प्याज, लहसुन आदि। यह जाति–दुष्ट खाद्य हुआ। जो व्यक्ति इन चीजों को अधिक मात्रा में खाता है, उसमें काम–वासना बढ़ती है और वह अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त हो सकता है, जो ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि में सब

प्रकार से घृणित है। 2. गन्दे तथा कीड़े–मकोड़ों से दूषित आहार को निमित्तदोष से युक्त कहते हैं। इस दोष से छुटकारा पाने के लिए ऐसे स्थान में भोजन करना होगा, जो खूब साफ–सुथरा हो। 3. आश्रय दोष– दुष्ट व्यक्ति से छुआ हुआ खाद्य पदार्थ भी त्याज्य है। कारण, इस प्रकार का अन्न खाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं। ब्राह्मण की संतान होने पर भी यदि वह व्यक्ति लम्पट एवं कुकर्मी हो, तो उसके हाथ का खाना उचित नहीं।

इस समय इन सब बातों के प्रकृत उद्देश्य पर किसी का ध्यान नहीं है। इस समय तो सिर्फ इसी बात का हठ मौजूद है कि ऊँची से ऊँची जाति का न होने से उसके हाथ का छुआ न खायेंगे, चाहे वह व्यक्ति कितना ही अधिक ज्ञानी या पवित्र आचरण का क्यों न हो। इन सब नियमों की किस भाँति उपेक्षा होती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण किसी हलवाई की दूकान पर जाकर देखने से मिल जाएगा। दिखायी पड़ेगा कि मक्खियाँ सब ओर भनभनाती हुई सब चीजों पर बैठती हैं, रास्ते की मिट्टी उड़कर मिठाई के ऊपर पड़ती है और हलवाई के कपड़े पर्याप्त साफ–सुथरे नहीं हैं। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिलकर कहते कि दूकान में शीशा बिना लगाये हम लोग मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मक्खियाँ खाद्य पदार्थ पर न बैठ सकेंगी एवं अपने साथ हैजा तथा अन्यान्य संक्रामक बीमारियों के कीटाणु न ला सकेंगी। भोजन के नियमों में हमें सुधार करना चाहिए, किंतु हम उन्नति न कर अवनति के मार्ग की ही ओर क्रमशः अग्रसर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जल में थूकना न चाहिए, किंतु हम नदियों में हर प्रकार का मैला फेंकते हैं। इन सब बातों की विवेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य शौच की विशेष आवश्यकता है। शास्त्रकार भी इस बात को भली भाँति जानते थे। किंतु इस समय इन सब पवित्र–अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य लुप्त हो गया है, इस समय उसका आडम्बर मात्र शेष है। चोरों, लम्पटों, मतवालों, अपराधियों को हम लोग अपने जाति–बन्धु स्वीकार कर लेंगे, किंतु यदि एक उच्च जातीय मनुष्य किसी नीच जातीय व्यक्ति के साथ, जो उसी के समान सम्माननीय है, बैठकर खाये, तो वह जाति–च्युत कर दिया जायेगा और फिर वह सदा के लिए पतित मान लिया जायेगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई है। अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के संसर्ग से पाप और साधु के संसर्ग से साधुता आती है और असत् संसर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य शौच है।

आभ्यन्तरिक शुद्धि कहीं अधिक दुस्तर कार्य है। आभ्यन्तरिक शुद्धि के लिए सत्य भाषण, निर्धन, विपन्न और अभावग्रस्त व्यक्तियों की सेवा आदि की आवश्यकता है। किंतु क्या हम सर्वदा सत्य बोलते हैं? अकसर होता यह है कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर', 'दीनबन्धु' आदि बड़े–बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनबन्धु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि

उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं– उन्हें भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किसी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति–पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय दूतों की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच में वे बादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किंतु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म–पुस्तकें रखी हुई है। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति–पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता–पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति–पूजा नहीं है, किंतु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति–पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि–पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे–अच्छे पीरों–फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय काबे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म–साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है; जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का जप किया जाता है, यह निम्न कोटि है और बाह्य पूजा निम्नातिनिम्न है।

किंतु इस स्थान पर यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि बाह्य पूजा के निम्नातिनिम्न होने पर भी उसमें कोई पाप नहीं है। जो व्यक्ति जैसी उपासना कर सकता है, उसके लिए वही ठीक है। यदि उसे अपने पथ से निवृत्त किया गया, तो वह अपने कल्याण के लिए, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दूसरे किसी मार्ग का अवलम्बन करेगा। इसलिए जो मूर्ति–पूजा करते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। वे उन्नति की जिस सीढ़ी तक चढ़ चुके हैं, उनके लिए वही आवश्यक है। ज्ञानी जनों को इन सब व्यक्तियों को अग्रसर होने में सहायता करने का प्रयत्न करना चाहिए, किंतु उपासना–प्रणाली को लेकर झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग धन और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं और अपने को बड़े भागवत समझते हैं, किंतु यह वास्तविक भक्ति नहीं है–वे लोग भी सच्चे भागवत नहीं है। अगर वे सुन लें कि अमुक स्थान पर एक साधु आया है और वह ताँबे का सोना बनाता है, तो वे दल के दल वहाँ एकत्र हो जायेंगे, तिस पर भी वे अपने को भागवत कहने में लज्जित नहीं होते। पुत्र–प्राप्ति के

लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, धनी होने के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, स्वर्ग–लाभ के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, यहाँ तक कि नरक की यन्त्रणा से छूटने के लिए की गयी ईश्वरोपासना को भी भक्ति नहीं कह सकते। भय या लोभ से कभी भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वे ही सच्चे भागवत हैं, जो कह सकते हैं– ''हे जगदीश्वर! मैं धन, जन, परम सुन्दरी स्त्री अथवा पांडित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी अहेतुकी भक्ति चाहता हूँ।'' जिस समय यह अवस्था प्राप्त होती है, उस समय मनुष्य सब चीजों में ईश्वर को तथा ईश्वर में सब चीजों को देखने लगता है। उसी समय उसे पूर्ण भक्ति प्राप्त होती है। उसी समय वह ब्रह्मा से लेकर कीटाणु तक सभी वस्तुओं में विष्णु के दर्शन करता है। तभी वह पूरी तरह समझ सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है और केवल तभी वह अपने को हीन से हीन समझकर यथार्थ भक्त की भाँति ईश्वर की उपासना करता है। उस समय उसे बाह्य अनुष्ठान एवं तीर्थ–यात्रा आदि की प्रवृत्ति नहीं रह जाती–वह प्रत्येक मनुष्य को ही यथार्थ देवमन्दिरस्वरूप समझता है।

शास्त्रों में भक्ति का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। हम ईश्वर को अपना पिता कहते हैं, इसी प्रकार हम उसे माता आदि भी कहते हैं। हम लोगों में भक्ति की दृढ़ स्थापना के लिए इन सम्बन्धों की कल्पना की गयी है, जिससे हम ईश्वर के अधिक सान्निध्य और प्रेम का अनुभव कर सकें। ये शब्द अत्यन्त प्रेमपूर्ण हैं। सच्चे धार्मिक ईश्वर को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वे उसे माता–पिता कहे बिना नहीं रह सकते। रासलीला में राधा और कृष्ण की कथा को लो। यह कथा भक्त के यथार्थ भाव को व्यक्त करती है, क्योंकि संसार में स्त्री–पुरुष के प्रेम से अधिक प्रबल कोई दूसरा प्रेम नहीं हो सकता। जहाँ इस प्रकार का प्रबल अनुराग होगा, वहाँ कोई भय, कोई वासना या कोई आसक्ति नहीं रह सकती– केवल एक अच्छेद्य बन्धन दोनों को तन्मय कर देता है। माता–पिता के प्रति सन्तान का जो प्रेम है वह भयमिश्रित है, कारण उनके प्रति उसका श्रद्धा–भाव रहता है। ईश्वर सृष्टि करता है या नहीं, वह हमारी रक्षा करता है या नहीं, इस सबसे हमारा क्या मतलब है और इसकी हम क्यों चिन्ता करें? वह हम लोगों का प्रियतम, आराध्य देवता है; अतः भय के भाव को छोड़कर हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। जिस समय मनुष्य की सब वासनाएँ मिट जाती हैं, जिस समय वह और किसी विषय का चिन्तन नहीं करता, जिस समय वह ईश्वर के लिए पागल हो जाता है, उसी समय मनुष्य ईश्वर से वस्तुतः प्रेम करता है। सांसारिक प्रेमी जिस भाँति अपने प्रियतम से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हमें ईश्वर से भी प्रेम करना होगा। कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, राधा उनके प्रेम में पागल थीं। जिन ग्रन्थों में राधा–कृष्ण की प्रेमकथाएँ वर्णित हैं, उन्हें पढ़ो तो पता चलेगा कि ईश्वर से कैसे प्रेम करना चाहिए। किंतु इस अपूर्व प्रेम के तत्व को कितने लोग समझते हैं? बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जिनका हृदय पाप से परिपूर्ण है, वे नहीं जानते कि पवित्रता या नैतिकता किसे कहते हैं। वे क्या इन तत्वों को समझ सकते हैं? वे किसी भाँति इन तत्वों को समझ ही नहीं सकते। जिस समय मन से सारे सांसारिक वासनापूर्ण विचार दूर हो जाते हैं और जब निर्मल नैतिक तथा

आध्यात्मिक भाव–जगत में मन की अवस्थिति हो जाती है, उस समय वे अशिक्षित होने पर भी शास्त्र की अति जटिल समस्याओं के रहस्य को समझने में समर्थ होते हैं। किंतु इस प्रकार के मनुष्य संसार में कितने हैं या हो सकते हैं? ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे लोग विकृत न कर दें। उदाहरणार्थ ज्ञान की दुहाई देकर लोग अनायास ही कह सकते हैं कि आत्मा जब देह से सम्पूर्णतया पृथक् है, तो देह चाहे जो पाप करे, आत्मा उस कार्य में लिप्त नहीं हो सकती। यदि वे ठीक तरह से धर्म का अनुसरण करते तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई अथवा कोई भी दूसरा धर्मावलम्बी क्यों न हो, सभी पवित्रता के अवतारस्वरूप होते। किंतु मनुष्य अपनी–अपनी अच्छी या बुरी प्रकृति के अनुसार परिचालित होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किंतु संसार में सदा कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर का नाम सुनते ही उन्मत्त हो जाते हैं, ईश्वर का गुणगान करते–करते जिनकी आँखों से प्रेमाश्रु की प्रबल धारा बहने लगती है। इसी प्रकार के लोग सच्चे भक्त हैं।

भक्ति की प्रथम अवस्था में भक्त ईश्वर को प्रभु और अपने को दास समझता है। अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह ईश्वर के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता है, इत्यादि। इस प्रकार के भावों को एकदम छोड़ देना चाहिए। केवल एक ही आकर्षक शक्ति है और वह है ईश्वर। उसी आकर्षक शक्ति के कारण सूर्य, चन्द्र एवं अन्यान्य सभी चीजें गतिमान होती हैं। इस संसार की अच्छी या बुरी सभी चीजें ईश्वराभिमुख चल रही हैं। हमारे जीवन की सारी घटनाएँ, अच्छी या बुरी, हमें उसी की ओर ले जाती हैं। एक मनुष्य ने दूसरे का अपने स्वार्थ के लिए खून किया। जो कुछ भी हो, अपने लिए हो या दूसरों के लिए हो, प्रेम ही इस कार्य का मूल है। खराब हो या अच्छा हो, प्रेम ही सब चीजों का प्रेरक है। शेर जब भैंस को मारता है, तब वह अपनी या अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिए ऐसा करता है।

ईश्वर प्रेम का मूर्त रूप है। सदा सब अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रस्तुत, अनादि, अनन्त ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। लोग जानें या न जानें, वे उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं। पति की परमानुरागिणी स्त्री नहीं जानती कि उसके पति में भी वही महान दिव्य आकर्षक शक्ति है जो उसको अपने स्वामी की ओर ले जाती है। हमारा उपास्य है–केवल यही प्रेम का ईश्वर। जब तक हम उसे स्रष्टा, पालनकर्ता आदि समझते हैं, तब तक उसकी बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता है, किंतु जिस समय इन सारी भावनाओं का परित्याग कर उसे प्रेम का अवतारस्वरूप समझते हैं एवं सब वस्तुओं में उसे और उसमें सब वस्तुओं को देखते हैं, उसी समय हमें परा भक्ति प्राप्त होती है।

योगी ब्रह्मानन्द तथा पालब्रण्टन

प्रस्तुत कर्ता– डा. विजय सिंह

अंग्रेजों के शासन काल के अन्तिम समय में इंग्लैण्ड निवासी डा. पालब्रण्टन पेशे से पत्रकार भारत में योगियों की खोज में आया था। उसने दु:सह कष्ट उठाकर गर्मी, सर्दी, बरसात में भारत वर्ष का पश्चिम से पूरब और उत्तर से दक्षिण भ्रमण किया। अन्ततोगत्वा वह महर्षि रमण के शरणापन्न हो स्वयं समाधि सुख का भागी बना। उसने "गुप्त भारत की खोज" (हिन्दी अनुवाद) नामक प्रख्यात पुस्तक लिखी जो विश्व में भारतीय ज्ञान का उज्जवल दस्तावेज एक पाश्चात्य द्वारा सिद्ध हुआ है।

अपने प्रारम्भिक खोज में, दक्षिण भारत में, मद्रास शहर के बाहरी भाग में, उसी एक योगी ब्रह्म से भेंट हुई। उसी वृत्तान्त को यहाँ सिद्धयोग के सुधी पाठकों के स्वाध्याय हेतु प्रस्तुत किया गया है।

पालब्रण्टन लिखता है कि– मुझे प्रथम बार यह खेदपूर्ण अनुभव हुआ कि योगियों को अपने साथ बातचीत करने के लिए राजी करना कैसा कठिन काम है। वे अधिक मिलना–जुलना ना पसन्द करते हैं। मुझे प्रतीत हुआ योगी ब्रह्म बड़ी तेज निगाह से मेरी तह लेने की चेष्टा कर रहे हैं। अचानक योगी ने हाथ उठा कर इशारा किया और हमें निकटस्थ ताड़ के पेड़ की छाया में ले गये। बैठ जाने की मूक आज्ञा दी और खुद भी बैठ गये।

मैंने कहा– मुझे योग में अधिक दिलचस्पी है और उसके बारे में कुछ जानने का अभिलाषी हूँ।

मुस्कराते हुये ब्रह्म बोले– दिखाई तो दे रहा है। अच्छा अपने प्रश्न कीजिये।

पा.– आप किस योग का अनुसरण करते हैं?

ब्र.– हठयोग का। सभी योगों में यह कठिनतम है। इस योग में शरीर और श्वास जैसे अड़ियल घोड़ों को बड़ी कठिनाई से काबू में लाना होता है जिससे स्नायु और मन पर सहज ही अधिकार हो जाता है।

पा.– ऐसा करने से क्या हाथ लगता है?

ब्र.– शारीरिक स्वास्थ्य, मनोबल और दीर्घायु– ये हठयोग से होने वाले लाभों में से कुछ हैं। मैं जिस प्रकार के योग की शिक्षा प्राप्त कर रहा हूँ, उसमें सिद्ध हुआ व्यक्ति अपनी मांसपेशियों को लोहे के समान कठोर बना सकता है। दु:ख, यंत्रणा उसका बाल भी बांका नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति बिना किसी प्रकार के संरक्षण के शीत और उष्णता की घोर तीव्रता सहन कर सकते हैं और बिना किसी क्षति के।

पा.– कृपया अपने योग के बारे में अधिक प्रकाश डालें।

ब्र.– मेरे गुरुदेव हिमाकीर्ण हिमालय की चोटियों पर अपने गेरूए वस्त्र को छोड़ और

किसी कपड़े के बिना ही रहते हैं, जहाँ पानी बर्फ बन जाता है। ऐसी सर्द जगह पर मेरे गुरुजी लगातार घण्टों बैठे रहते हैं। इस योग की कुछ ऐसी ही महिमा है।

पा.– तो आप किसी के चेले हैं?

ब्र.– हाँ! अब भी मुझे कई पहाड़ लांघना है। मैंने लगातार 12 वर्ष तक प्रति दिन योग के अभ्यास में बिताया है।

पा.– क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप योगी कैसे बने?

ब्र.– मैं अपने माता–पिता का एकलौता बेटा हूँ। बचपन से ही मैं शांत प्रकृति का हूँ। अकेले बाग–बगीचों या खेतों की सैर में मेरा मन खूब लगता था। जब मैं 12 वर्ष का था, एक दिन कुछ प्रौढ़ व्यक्तियों की बातचीत मेरे कानों में पड़ी। उन्हीं की बातों से योग का नाम मुझे पहले पहल मालूम हुआ। योग के विषय में और जान लेने की उत्कृष्ट इच्छा पैदा हुई। मैं लोगों से पूछ–ताछ करने लगा। तमिल भाषा की योग सम्बन्धी कुछ किताबें मेरे हाथ लगीं। पढ़ने पर योगियों के बारे में कई दिलचस्प बातें मेरे जानने में आईं। इन किताबों से पता चला– योग मार्ग पर सफलता के साथ आरुढ़ होने के लिए गुरु की परम आवश्यकता है। किताबों में वर्णित प्राणायाम का अभ्यास घर वालों से छिपकर करने लगा। मुझे उस समय नहीं मालूम था कि सिद्ध गुरु की मदद के बिना उन अभ्यासों का नाम तक नहीं लेना चाहिए।

कुछ वर्षों के अभ्यास का बुरा परिणाम सामने आया। जान पड़ता था कि मेरे कपाल के मर्म स्थल में छेद हो गया है। एक दिन अभ्यास करते हुये रक्त का स्त्राव होना प्रारम्भ हुआ। मेरा शरीर ठंडा और सुन्न हो गया। मैंने सोचा कि मैं मरने वाला हूँ। दो घंटे बाद मुझे एक अजीब स्वप्न दिखाई दिया– किसी पूजनीय योगिराज ने दर्शन दिये और बोले–इन निषिद्ध अभ्यासों में हाथ डालकर, देखो! तुमने अपनी कैसी हालत कर ली है? आश्चर्य की बात यह कि उसी क्षण से मेरी तबियत सुधरती गई और अन्त में खूब चंगा हो गया। लेकिन सिर में उस घाव का निशान अब भी है।

प्राणायाम करना छोड़ दिया और घर के बन्धनों के छूटने की प्रतीक्षा की। घर छोड़कर गुरु की खोज में निकल पड़ा। इसमें बार–बार निराश होना पड़ा। क्योंकि मठाधीश, दार्शनिक आचार्यों से मुझे संतोष नहीं मिला। इस प्रकार से दस गुरुओं से भेंट की, पर वे योग के सच्चे आचार्य मालूम नहीं हुए। फिर भी बिना निराश हुये मैंने अपनी खोज जारी रखी। अब मैं यौवन के द्वार पर पहुँच गया था। अतः घर–द्वार त्याग कर मरते दम तक सच्चे गुरु को पाने के लिये ग्यारहवीं बार यात्रा पर निकला। घूमते–घामते तंजौर जिले के एक बड़े गांव में पहुँचा। प्रातः स्नान नदी पर जाकर किया और नदी के किनारे चलने लगा। आगे चलकर नदी तटवर्ती लाल पत्थर का बना एक मन्दिर मिला। उत्सुकता के कारण झांक कर मंदिर के भीतर देखा, वहाँ कई सज्जनों को एक लंगोटी–धारी साधु के चारों ओर बैठे श्रद्धापूर्वक उनके उपदेश सुनते देखा। उन महात्मा के चेहरे पर अकथनीय गौरव, गम्भीरता तथा रहस्यमय तेज व्याप्त था। मैं चकित भाव से द्वार पर ही खड़ा रहा।

अचानक महात्मा ने द्वार की ओर नजर दौड़ायी। तब एक आन्तरिक प्रेरणा वश मंदिर में प्रवेश किया। महात्मा ने मेरी बड़े प्रेम से आवभगत की, बैठने को कहा और बोले– छः महीने हुए मुझे तुम्हें शिष्य के रूप में लेने का आदेश मिला था, अन्त में तुम ही गये। मुझे याद आया कि

छः महीने पूर्व ही मैंने अपनी ग्यारहवीं यात्रा गुरु–खोज में शुरु की थी।

यों मुझे मेरे गुरुदेव मिल गये। मैं सदैव गुरुदेव के संरक्षण में रहा। वे कभी शहरों में जाते, कभी घने जंगलों के निर्जन प्रदेश में। उनकी कृपा एवं प्रशिक्षण से मैं योग मार्ग पर उन्नति करने लगा और अब इतने वर्षों के भटकाव के बाद मुझे शान्ति मिली। मेरे गुरुदेव हठयोग का अनुसरण कर अद्‌भुत सिद्धियाँ प्राप्त किये हुये थे। मुझे भी प्राणायाम का तरीका सिखाया। एक बार योग की एक क्रिया की सिद्धि में मुझे 40 दिन उपवास करना पड़ा था।

एक दिन मेरे गुरुदेव ने मुझे कहा– अभी तुम्हारे पूर्ण सन्यास लेने का समय नहीं आया है। अपने घर लौट जाओ और साधारण जीवन बिताओ। तुम विवाह कर लोगे और तुम्हारे एक लड़का भी होगा। तब तुम्हारे 39वें साल में कुछ संकेत मिलेंगे। उसके पश्चात तुम सांसारिक जीवन के परित्याग योग्य हो जाओगे। तब तुम फिर जंगलों में चले जाओगे और साधना में तब तक लीन रहोगे जब तक कि तुम्हें वह परम पुरुषार्थ न मिले जिसकी सभी योगी खोज करते हैं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूँगा। तुम मेरे पास आ जाना।

मैंने सद्‌गुरु की आज्ञाओं का पालन किया। उनकी की गयी भविष्यवाणी के अनुसार ही मेरे जीवन में घटना–चक्र घटित होता गया। इस प्रकार योगी ब्रह्म की जीवन कथा उनके मुख से पालब्रण्टन सुन कर सुखद आश्चर्य में डूब गया।

दूसरे दिन की मुलाकात में पालब्रण्टन योगी ब्रह्म सुखानन्द से उसके योग मार्ग का स्वरूप, उसका उद्देश्य और इतिहास बताने की प्रार्थना की।

ब्र.– कौन कह सकता है कि हठयोग, जिसका अनुसरण मैं करता हूँ, कितना प्राचीन है। ग्रंथों में लिखा हुआ है कि भगवान शिव ने घेरण्ड महर्षि को इसका उपदेश किया। मत्स्येन्द्र नाथ भी इस विद्या को भगवान शिव से प्राप्त किये थे। हजारों वर्षों से गुरु–शिष्य परम्परा से योग–विद्या का क्रम जारी है। सिद्धहस्त योगियों को छोड़कर हठयोग को बिरला ही कोई आदमी जानता है।

आज आम लोगों में हठयोग के प्रति भ्रांत धारणा फैली हुई है। नुकीली कीलों पर लेट रहना, एक हाथ को वर्षों उठाये रहना, आग के घेरे में पड़े रहना, यह हठयोग नहीं है। ऐसे लोग हठयोग पर धब्बा हैं। चूंकि इन्हें हठयोग के सच्चे उद्देश्य एवं सिद्धान्तों का परिचय नहीं है।

पा.– तो इनमें इनका दोष ही क्या है? सच्चे योगी तो अपने को प्रकट नहीं करते और अपने अमूल्य–विज्ञान को छिपाये रहते हैं। अतः गलतफहमियां तो फैलना ही है।

ब्र.– पालब्रण्टन के कथन से सहमत न होते हुये योगी ने कहा– क्या राजा–महाराजा अपने खजाने के अमूल्य आभूषणों, हीरे, जवाहरातों को सभी के देखने के लिये खुली सड़क पर छोड़ देते हैं? हमारा योग विज्ञान अमूल्य दुर्लभ रत्न है। इसके समान कोई पाने योग्य रत्न मनुष्य के लिये नहीं है। अतः जिसको ऐसे जौहर को पाने की लालसा हो, वह इसके लिये प्राणपण से खोज करे। यही योग को समझने का एक मात्र और सही मार्ग है। बार–बार हमारे ग्रंथ इस अमूल्य धन को गुप्त रखने की आज्ञा देते हैं। हमारे योगाचार्य ऐसे लोगों को, जो वर्षों तक परीक्षा किये जाने पर खरे निकले, उनको इस मार्ग का सच्चा मर्म बता देते हैं। हठयोग योग की अन्य पद्धतियों से अधिक रहस्यपूर्ण है।

OOO

गीता का कर्मयोग

पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने कर्मयोग के बारे में बताया कि ''**तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोग**।'' अर्थात् तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग या कर्म योग है। यह क्रियायोग का सूत्र मनुष्य को समाधि सिद्ध कराने वाला है। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन ने को इसी माध्यम से उपदेशित कर यथार्थ लक्ष्य में लगा दिया। इसका परिणाम भी उत्तम मिला किंतु अर्जुन ने भगवान से प्रश्न कर दिया। प्रभो ज्ञान और कर्म दोनो में श्रेष्ठ कौन है? इसका रहस्योद्‌घाटन करें। क्योंकि आप की बात मेरी समझ में स्पष्ट रूप से नही आ रही है। इसके उत्तर में भगवान अर्जुन को ज्ञान योग, सांख्ययोग और कर्मयोग के बारे में सूत्रवत बताते हुए अपने मूल लक्ष्य कर्मयोग के बारे में विस्तृत चर्चा करने लगे।

कर्मयोग प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आवश्यक है। कोई व्यक्ति बिना कर्म किये रह नही सकता है। भगवान ने कहा-

न कर्मणा मनारम्भान्नैष्कर्म्य पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्यसनादेव सिद्धि समधिगच्छति।।
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजै गुणै:।।

अर्थात् व्यक्ति किसी भी मार्ग का अनुसरण करें, लेकिन उसको कर्मो के रूप यानि कर्मो का विधान को त्यागने की आवश्यकता नही है। सामान्य जीवन में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत कर्मो को करता है। हर एक व्यक्ति के जीवन के अलग-अलग कर्म होते है। उन कर्मों को करता हुआ ही वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। जैसे-साधु, सन्यासी, योगी के कर्म तप, स्वाध्याय वाले ही होते है, साधारण मनुष्य जीवन में विभिन्न कर्मो अर्थात् उदरपूर्ति के कार्यो से लेकर चारों पुरुषार्थ को प्राप्त करता है। भगवान ने भी यही कहा कि कर्मों के स्वरुप को त्यागने की आवश्यकता नही है। कर्म करते हुए ही निष्कर्मता ही प्राप्त होता है। न तो कर्म के त्यागने से भगवत साक्षात्कार की सिद्धि हो सकती है। कर्मो का त्याग भी किसी प्रकार से भी नही हो सकता है। यह मनुष्य का स्वभाव है। इसलिए अर्जुन तुमको भी अपने सहज कर्म युद्ध जो स्वत: उपस्थित है, उसे करने से विरत नहीं होना चाहिए। यह कर्म भी शास्त्र विहित ही कर रहे हो। इसलिए यह कर्म श्रेष्ठ है।

भगवान ने सृष्टि रचना करते हुए देवता और मनुष्यों को आत्मनिर्भर करने के लिए यज्ञ का माध्यम बनाया। इससे अपने-अपने कर्मो को करते हुए दोनों समृद्ध होते रहे। या रूपी कर्म को करने से देवता मनुष्यों के प्रिय भोगों को देते रहेगें। कर्म के मूल उत्पत्ति के बारे में बताते हुए कहा-

कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे पातीष्ठितम्।।

अर्थात् यह कर्म वेदों से उत्पन्न हुआ है और वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न है।
सर्वव्यापी परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है। यह यज्ञ भी सामाजिक और शास्त्रीय कर्म है।
यज्ञकर्म से समाज को स्वच्छ वायु प्राप्त होती है। जिससे जीव जगत की रक्षा होती है। यज्ञ का
शास्त्रीय पक्ष यह है कि यज्ञ के माध्यम से पितर तृप्त होते हैं। उनके तृप्त होने से भी समाज का
विकास होता है। इसलिए इस सृष्टि में कर्मचक्र प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में चल रहा है। इसके
अनुसार कार्य न करने पर कष्ट तथा इसके साथ कार्य करने पर सुख की प्राप्ति होगी। इसीलिए
भगवान ने कहा–

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।। 16/23
तस्माच्छात्र प्रमाण ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्मकर्तुमिहार्हसि।। 16/24

जो व्यक्ति शास्त्र विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से कार्य करता है, वह न तो सिद्धि को
प्राप्त करता न परमगति, न सुख को ही प्राप्त कर सकता है। इसलिए शास्त्र प्रमाण के अनुसार
नियत कर्म को करना ही श्रेयस्कर होगा। कर्म के ही परिप्रेक्ष्य में भगवान ने जनक आदि ज्ञानी
पुरुषों के कर्म के बारे में बताते हुए कहा कि– ये लोग भी इस संसार में रहते हुए आसक्ति रहित
कर्म द्वारा ही सिद्धि को प्राप्त किये हुए हैं। इन्हीं महापुरुषों ने जो जो आचरण करके समाज को
मार्ग दिखाया वही मार्ग मनुष्यों के द्वारा ग्रहण होते चले आ रहे हैं। भगवान ने सबके विहित कर्मों
के बारे में बताते हुए स्वयं को भी कर्मयोगी कहा है। अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि
योगेश्वर कृष्ण भी कर्म से वेष्ठित हैं। भगवान अर्जुन की शंका को समझते हैं। उन्होंने कहा–
अर्जुन यदि मैं कर्म को न करूँ तो संसार के लोग ही वर्णसंकर हो जायेंगे। संसार की सारी क्रिया
ही अस्त–व्यस्त हो जायेगी। इसलिए संसार के लोगों के निमित्त कर्म करना हमारा धर्म है। अर्जुन
आज जिस विषम स्थिति में तुम हो तुम्हारा धर्म युद्ध करना है। क्योंकि सारे कर्म पूर्व निर्धारित
व्यवस्था के अनुसार निश्चित है। फिर भी मनुष्य कदाचित् कर्त्तापन के अहंकार से ग्रसित हो
जाता है। यहीं व्यक्ति को सावधान रहने की आवश्यकता होती है। साधक को ध्याननिष्ठ चित्त से
अपने सम्पूर्ण कर्म को अपने इष्ट में समर्पित करना तथा आशा, ममता और संताप रहित होकर
कर्म करना चाहिए। यही बात अर्जुन को बताया तथा युद्ध करने को ही श्रेष्ठधर्म कहा। भगवान ने
कहा– अर्जुन जो मेरे मत के अनुसार कार्य करता है, वह सम्पूर्ण कर्मों के बंधन से छूट जाता है।
व्यक्ति को अपने कर्म रूपी धर्म पर तो मर जाना श्रेयस्कर कहा गया है–

श्रेयान्स्व धर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनः श्रेयः परधर्मो भया वहः।।

इस प्रकार योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का पूर्णतः उपदेश देकर उसे
अपने कर्म में प्रेरित किया। अर्जुन ने सामान्य जन की तरह लोक कल्याणकारी प्रश्न पुनः पूछा–
हे प्रभो! आप यह बताइये कि व्यक्ति पापकर्म किससे प्रेरित होकर करता है। क्या श्रेष्ठ लोगों से
पापकर्म नहीं होता है। अथवा क्या सामान्य लोग ही पापकर्म करते हैं। भगवान ने अर्जुन के लोक
कल्याण के प्रश्नों पर प्रसन्नता पूर्वक कहा– अर्जुन व्यक्ति के अन्दर सतोगुण, रजोगुण और
तमोगुण होता है। उसको वह जान नहीं पाता है। किंतु कर्म में जैसे ही प्रवृत्त होता है। व्यक्ति

उत्पन्न हुए गुण के अनुसार कार्य करने लगता है। रजोगुण व्यक्ति को क्रियाशील कर देता है। तमोगुण अग्नि में धुएं की तरह होता है। ऐसे में उसका मन, बुद्धि और इन्द्रिया काम से ग्रसित हो जाती है। यह ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित कर देता है। इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता है। श्रेष्ठ लोग इन्द्रियों पर नियंत्रण करते हैं। इससे काम रूपी पाप धीरे–धीरे क्षीण होता चला जाता है। इस काम रूपी अग्नि को शान्त करने के लिए यौगिक आसनों की आवश्यकता होती है। सिद्धगुफा के साधक भाइयों ने यह अवश्य ही अनुभव किया होगा कि जीवन तत्व साधन करने वाले को वासना उद्विग्न नहीं कर सकती है। ऐसा दादा गुरुदेव का महान वरदान है। साधक साधन करते ऐसा अनुभव कर सकता है। इसीलिए भगवान ने अर्जुन को पापरूपी वैरी को मारने का उपदेश दिया है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।

स्वामी चरणदास ने भी कहा है–

काम क्रोध मोह लोभ से और पाँचवा गर्व।
राजकरे वसुधा विषे इन बश कीने सर्व।।

□□□

दया करो गुरुदेव!

– जगदीश राय बंसल 'अधम'

दया करो गुरु देव मुझ पर दया करो
सुन लो मेरी टेर मुझ पर कृपा करो
सादा जीवन सादा खाना
धोती कुर्ता सादा बाणा
अजब निराला तेज,
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु.
योगों में तुम योगी राज हो
मथुरा के तुम नन्द लाल हो
हे सिद्धों के सरदार———
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु
हे देवों के आदि कारण
आए भक्तों के कष्ट निवारण
अनुग्रह को अनेक———
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु
सूर्य और चन्द्रमा तुम हो
सामवेद और शंकर तुम हो
हे देवन के देव———
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु
नारद शारद कुबेर तुम्ही हो
गंगा यमुना सुमेर तुम्ही हो
हे वेद व्यास अवतार———
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु
ज्ञानी के ज्ञान तुम्ही हो
ध्यानी के ध्यान तुम्ही हो
हे अखंड मण्डला कार———
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु
मीरा अहिल्या चेली तेरी
अनसुईया शबरी घनेरी
सारो नरसी ज्यों काज———
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु
हरियाली की वृष्टि तुम हो
जन जीवन की सृष्टि तुम हो
अधम के प्रतिपाल———
मुझ पर दया करो।।दया करो गुरु

निष्काम कर्मयोगी

श्री विन्ध्यवासिनी जी

केशवदेव उपाध्याय

वाराणसी कमीश्नरी के वकील सम्प्रदाय में अजात शत्रु के नाम से जानने योग्य बाबू विन्ध्यवासिनी सिंह जी मूल निवासी मधुपुर, चन्दौली के थे। चन्दौली पहले वाराणसी जिले की एक तहसील थी, जो बाद में जिला बन गया एवं चन्दौली जनपद के नाम से जाना जाता है। इनके पूज्य पिता स्व. देवी प्रसाद सिंह जी भी माँ विन्ध्यवासिनी (विन्ध्याचल धाम स्थित देवी) की कृपा से पैदा हुये थे। श्री देवी प्रसाद जी को दो लड़के हुये। पहले का नाम विन्ध्यवासिनी प्रसाद सिंह तथा दूसरे का नाम मृत्युन्जय प्रसाद सिंह रखा गया। श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद सिंह को चार सन्तानें है। पहली सन्तान का नाम मृदुलता सिंह है और उसकी शादी हुये कई साल हो रहे हैं और वह अपने पतिदेव तथा बाल–गोपालों के साथ श्री प्रभु कृपा से सानन्द जीवन यापन कर रही हैं। इनकी दूसरी सन्तान का नाम श्री ओम प्रकाश सिंह है और यह घर पर मधुपुर में खेती बारी का कार्य देखते हुये अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ रह रहे हैं। इनकी तीसरी सन्तान का नाम श्रीमती मधु सिंह हैं तथा यह भी अपने पतिदेव तथा परिवार के साथ ससुराल में सुखमय जीवन यापन कर रही है। चौथी सन्तान का नाम श्री प्रकाश सिंह जी है जिन्हें आम जनता बच्चा बाबू के सम्बोधन से पुकारती है। आदरणीय गुरुभाई श्री विन्ध्यवासिनी जी ने योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से सन् उन्नीस सौ अस्सी में योगदीक्षा प्राप्त की। एक समय था (1976 से 2004) जब वाराणसी कमिश्नरी एवं दीवानी के पहले एवं दूसरे नम्बर पर स्थान पाने वाले दोनों एडवोकेट हमारे आदरणीय गुरुभाई ही थे। यदि किसी मुकदमें में एक पार्टी ने बाबू आत्मा प्रसाद सिंह को अपना वकील बनाया, तो विपक्ष की विवशता थी कि वह बाबू विन्ध्यवासिनी प्रसाद सिंह को अपना वकील बनावे। वकालत पेशे में इन लोगों से लड़ाई लेने वाला कोई तीसरा योद्धा नहीं था। दीक्षा से पूर्व भाई विन्ध्यवासिनी जी समाजवादी विचार धारा के पक्षधर थे। किसी भी वस्तु का संग्रह उनके स्वभाव में नहीं था। आराध्यदेव से दीक्षा प्राप्ति के बाद, उनके सम्पर्क में रहने का मौका मिला एवं जो स्वभाव उनका दृष्टिगोचर हुआ वह बेमिसाल है। आदरणीय भाई जी तीन साल से ज्यादा समय तक सरकारी वकील भी रहे। एक साल की अवधि तक सरकारी वकील के पद पर रहने वाला व्यक्ति कई लाख रुपये कमा लेता है परन्तु यह लिखते हुए गर्व का अनुभव हो रहा है कि इस पद पर रहते हुये, इन्होंने ''डेड आनेस्ट'' (पूर्ण ईमानदार) होने का जो रिकार्ड स्थापित किया है, उसका दूसरा उदाहरण मिलना असम्भव ही है। इनके व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करने वाले कुछ रहस्य इस प्रकार हैं।

एक किसान की कई एकड़ खेती की जमीन का मुकदमा चल रहा था। आदरणीय भाई साहब उसके वकील थे। उस दिन उस मुकदमें में बहस होनी थी। ऐसी परम्परा सी बन गयी है कि बहस पर जाने से पूर्व वकील लोग अपनी बहस करने की फीस लेकर ही बहस करने जाते हैं, श्री भाई जी ने अपने सहायकों के साथ, अपने कोर्ट स्थित चैम्बर से कोर्ट की यात्रा ज्योंहि आरम्भ की, उस किसान ने उनके हाथ में पाँच–पाँच सौ के कुछ नोट देते हुए निवेदन किया कि वकील साहब इस समय आर्थिक स्थिति बहुत खराब चल रही है, अपनी औरत के गहने गिरवी

रखकर ये पैसा लाया हूँ। श्री भाई जी उस किसान की बात सुनकर स्तब्ध भाव से उसे देखते हुए रुक गये एव सप्रेम बोले, "श्री प्रभु जी ने हमें बहुत दिया है, इन पैसों को अपनी जेब में रखिये एव आज के बाद ऐसे पैसे हमें कदापि देने का कष्ट न करें। एक बात और समझ लीजिए कि आप की बहस एवं मुकदमें की पैरवी पैसे के अभाव में न तो खराब होगी और न रुकेगी।" इसके बाद वे कोर्ट में गये एवं जोरदार बहस किये। किसान साथ ही गया था एवं साथ ही जब वापस इनके चेम्बर में आया तो इन्होंने सबके साथ चाय पी एव उससे कहा कि आज तो जाते–जाते रात्रि हो जायेगी। कल गिरवी वाले जेवरात वापस लेकर अपनी पत्नी को अवश्य–अवश्य वापस दे दीजिएगा। उस मुकदमे में किसान को विजय हासिल हुई।

वाराणसी शहरी क्षेत्र की एक नजूल भूमि पर एक दबंग पार्टी अपना कब्जा करना चाहती थी। सरकारी रिकार्ड में उसका कोई वारिस नही था। उस समय आदरणीय भाई जी सरकारी वकील थे। उस दबंग पार्टी को किसी ने परामर्श दिया था कि यदि सरकारी वकील साहब की तरफ से सिर्फ इतना लिखित रूप से मिल जाये कि इस भूमि के विषय में हमें कोई जानकारी नही है तो यह जमीन (भूमि) आप की हो जायेगी। उस दबंग द्वारा कलेक्ट्रेट द्वारा अपने पक्ष में फर्जी कागजात तैयार करा लिया गया। उस समय, उस भूमि की कीमत लगभग तीस पैंतीस लाख थी। सरकारी स्टैंप पर यह टाइप करा लिया गया कि इस भूमि के सम्बन्ध में मुझे कोई जानकारी नहीं है नीचे दाहिनी तरफ भाई जी का नाम एव उसके बाद सरकारी वकील, वाराणसी लिखा था। उस कागज को हस्ताक्षर के लिये भाई जी के सम्मुख रखने की बात थी। दबंगों ने कई परिचितों से उनसे हस्ताक्षर कराने को कहा, परतु किसी की भी हिम्मत नही पड़ी। इन सबों ने उनके (आदरणीय भाई जी के) प्रिय व्यक्ति को प्रलोभन देकर एक लिफाफे में एक लाख रुपया और विशिष्ट मिठाई के एक किलो के डिब्बे के साथ भेजा और समझाया– कि कोर्ट से जाने के बाद, थोड़ी देर आराम करके वकील साहब अपने चैम्बर में बैठते हैं। उसी समय यह स्टेम्प पेपर उपरोक्त सामानों के साथ उनके सामने हस्ताक्षर के लिये रखना। उसने वैसा ही किया। भाई जी चैम्बर में बैठे थे एवं यह आदमी यह कागज लेकर उनके सामने उपस्थित हुआ। अपनी चालाकी में उसने उन्हें पहले लिफाफा (जिसमें पैसा रखा था) दिया, फिर मिठाई का डिब्बा दिया एव सबसे बाद में यह स्टैम्प पेपर उनके सामने रखकर निवेदन किया, "सर! इस पर हस्ताक्षर करने की कृपा करें।" एक अप्रत्याशित वातावरण उपस्थित हो गया। आदरणीय भाई जी ने उस परीचित व्यक्ति से कहा, "आप को यह घृणित कर्म करते हुए शर्म नही आयी। कम से कम एक बार सोच तो लिया होता। आप को कुछ और नही कहूंगा यह पैसा, मिठाई और कागज लेकर इसी समय उसे वापस कर आइये।" बेचारे चैम्बर से निकले एव सीधे चले गये। आजके समाज का प्राणी मात्र सौ रुपये के लिए सौ बार अपना या दूसरे का फर्जी हस्ताक्षर कर देगा परतु अद्वितीय थे बाबू विन्ध्यवासिनी सिंह जी। उनके व्यक्तित्व का आकलन सुधी पाठक गण स्वय ही कर लेवें।

यह प्रसंग उस समय का है जब भाई जी सरकारी वकील थे एवं अपने सरकारी चैम्बर में बैठे हुये थे। हमारे एक वाराणसी शहर के गुरु भाई के सामने की घटना है। एक वकील साहब, जिनकी वकालत अच्छी चलती है, दो तीन फाइलें लेकर आये एव सादर नमस्कार किये। श्री भाई जी ने उन्हें बैठने का इशारा किया। उस समय भाई जी किसी अन्य व्यक्ति को कुछ आदेश दे रहे थे। खाली होकर भाई जी ने पूछा, "कहिये वकील साहब! कैसे आना हुआ।" वकील साहब

ने कहा, "यह मुकदमे की फाइल है इसमें बहस चल रही है, मैं सटीक तर्क नहीं दे पा रहा हूँ एवं आज इसी कारण बहाना बनाकर सोमवार को बहस का समय लिया हूँ। लगता है मैं मुकदमा हार जाऊँगा।" आदरणीय भाई जी ने उनकी फाइलों को बीस मिनट में पढ़ा एवं बहस के सत्रह प्वाइंट नजीर (उदाहरण) के साथ नोट कराये। उनके नोट कराये तर्कों को समझ कर वकील साहब बड़ा प्रसन्न हुये। उन्होंने पाँच–पाँच सौ के दो नोट तथा सौ रुपये के पाँच नोट कुल पन्द्रह सौ रुपये देते हुए निवेदन किया कि सर! इसे स्वीकार करने की कृपा करें। आदरणीय भाई जी ने मुस्कराते हुए कहा, "वकील साहब मल्लाह–मल्लाह से नाई–नाई से मेहनताना नहीं लेता तो मैं वकील से पैसा कैसे ले सकता हूँ। आप इन पैसों को अपने पास रखिये।" भाई जी से मिलने आया वकील भी आदर्श चरित्र का व्यक्ति था। उसने भाई जी से निवेदन किया "सर! यह पैसे आप के ही हैं क्योंकि अपने मुवक्किल से हमने यह कह करके पैसा लिया है कि सरकारी वकील साहब अनुभवी व्यक्ति हैं हाई कोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट में भी बहस करते हैं, अतः उन्हें कुछ पैसे दे दो। उसने यह पन्द्रह सौ रुपये आप के लिये दिये हैं। इसे स्वीकार करने की कृपा करें।" वकील साहब आप ने यह बात हमें बता दिया, तो मैंने पैसा पा लिया। अब मैं यह पैसा आप को दे रहा हूँ।" उस वकील ने फिर आग्रह किया परंतु भाई साहब ने पैसा नहीं लिया, उनके स्वभाव का वकील मिलना यदि असम्भव नहीं तो महान दुर्लभ है।

वकालत के पेशे में रहते हुये, उन्होंने कभी भी किसी से पैसा नहीं मांगा। पूरे दिन की आमदनी का अधिकांश हिस्सा अपने सहायकों को बांट दिया करते थे। यदि किसी मुवक्किल ने उन्हें पैसा दिया तो उससे यह जरुर पूछते थे कि राह खर्च रखे हो या सभी रुपये हमें ही दे दिये। गुरुभाई–बहनों के प्रति उनके हृदय में अगाध प्रेम था। वाराणसी मण्डल में होने वाले मासिक सत्संग में शायद ही वे कभी अनुपस्थित रहे हों। प्रायः प्रत्येक सत्संग में भाई जी उपस्थित रहते ही थे। वे चाहे बहुत जटिल एवं गम्भीर विषय पर चर्चारत हैं एवं उसी समय यदि हमारा कोई गुरुभाई उनके पास पहुँच गया तो कुछ देर के लिए चर्चा बन्द कर उसका हाल चाल लेना उनका स्वभाव बन गया था। यदि कोई उनका जूनियर वकील या सहायक बीमार पड़ गया या अस्पताल में भर्ती हो गया तो अपने चैम्बर की कमाई का उसके हिस्से का भाग उसके घर भिजवा देते थे। कभी–कभी तो जब चैम्बर की कमाई बिल्कुल ही कम होती थी। वे मात्र दस रुपया रिक्शे का भाड़ा रखकर बाकी पैसा अपने अधीनस्थों के बीच बांट दिया करते थे। हमारे आदरणीय गुरुभाई बाबू आत्मा प्रसाद सिंह जी उनके इस स्वभाव के कारण भाई जी को नबाब साहब कहकर पुकारते थे।

सन् उन्नीस सौ अठहत्तर उनासी का समय था। उन दिनों श्री गुरुदेव जी महाराज का वाराणसी का कार्यक्रम परम आदरणीय गुरुभाई श्री ऋषिराम शर्मा जी के मकान पर नगवा मुहल्ले में (काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के समीप) हो रहा था। आराध्यदेव जी अपने पार्षद गणों के साथ पवित्र गंगा स्नान करने पैदल ही जा रहे थे। आदरणीय गुरुभाई श्री विष्णु दत्त जी ने बाबू विन्ध्यवासिनी प्रसाद सिंह का पेशे से सम्बन्धित कोई कार्य श्री गुरुदेव से निवेदित किया। उनकी बातों को सुनने के बाद, आराध्यदेव जी ने अपने मुखारविन्द से कहा, "लल्ला! विन्ध्यवासिनी दैवी सम्पदा से सम्पन्न है।" आदरणीय भाई जी का मुखमण्डल बड़ा ही ओजस्वी था। बिल्कुल शान्त चित्त। किसी कार्य को करने में उतावलापन नहीं था। वे उच्च कोटि के योगी साधक भी रहे।

OOO

दीप जलते रहे

डा. छोटे लाल दीक्षित

सृष्टि के अनन्त जीवों में मनुष्य ही ऐसा जीव है जिसमें अपने को अतिक्रमण करने की क्षमता है। पशु, पक्षी, कीट, पतंग अथवा जलचर, थलचर, नभचर सभी जीव–जन्तुओं का विकास प्राण तक ही हुआ है। प्रकृति उन्हें अपने अनुसार चलाती है। वे सब कुछ अपनी सहज प्रवृत्तियों के अनुसार करते हैं। मनुष्य को मन और बुद्धि प्राप्त है जिनके कारण वह अपना विकास करने को स्वतंत्र है। यही स्वतन्त्रता उसे सुख–सुविधा, भोग–विलास, भोग–वैभव, लीला–विलास की प्रेरणा देकर उससे उपभोग की अनन्त वस्तुओं का संग्रह करवाती है। इस संग्रह के लिए उसे झूठ, फरेब, आडम्बर, अनाचार, भ्रष्टाचार के मार्ग अपनाने पड़ते हैं जो आज की उपभोक्तावादी संस्कृति का यथार्थ है। सामान्य व्यक्ति इसी यथार्थ में डूबा रहना चाहता है, यही उसे प्रिय होता है। लेकिन मनुष्य की स्वतन्त्रता का एक दूसरा पक्ष भी है जो उसे श्रेय की ओर ले जाता है। जिसके द्वारा वह न केवल त्याग, अपरिग्रह और लोक–संग्रह को अपनाता है वरन् विश्व मैत्री और विश्व–प्रेम में डूबकर समाज, राष्ट्र और मानव–मात्र के लिए सर्वस्व समर्पित कर देने के लिये तत्पर हो जाता है तथा मन–बुद्धि का अतिक्रमण करके भागवत चेतना के साथ एकाकार हो जाता है, अपने भीतर के देवत्व का विकास करके भगवान बन जाता है। उसके समस्त कार्य भगवान के कार्य बन जाते हैं और उसकी समस्त इच्छाएं भगवान की इच्छाएं हो जाती हैं। स्वतन्त्रता के इसी पक्ष को विकसित करना मानव जीवन का आदर्श और लक्ष्य है।

उपभोक्तावाद से ओत–प्रोत मूल्यहीन जीवन ने सामाजिक चेतना को इतना विकृत कर दिया है कि सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित शिक्षित और समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति भी मूल्यों और आदर्शों की बात सुन कर नाक–भौं सिकोड़ने लगते हैं। कभी नाना जी देशमुख महाविद्यालय के प्रवक्ताओं के बीच लोक–संग्रह पर बोल रहे थे। किसी प्रवक्ता ने अन्यमनस्क भाव से कहा–ये आदर्श की बातें हैं। जीवन में इनसे कोई लेना–देना नहीं। उच्च शिक्षा प्राप्त महाविद्यालय के जिन शिक्षकों से आदर्शों को जीवन में उतारने की अपेक्षा की जाती है उनको भी आदर्श विजातीय लगते हैं और आदर्श वादी व्यक्ति अतीत जीवी प्रतीत होते हैं क्योंकि वे आधुनिकता की चका–चौंध में उपभोग की लालसा से प्रेरित संग्रह की भावना से ओत–प्रोत रहते हैं। उनके लिये आदर्श अवरोधक हैं। विडम्बना यह है कि सद्‌गुणों और आदर्शों के प्रति उनके मन में अनास्था और उपेक्षा तो होती ही है– वे अपने आचरण, व्यवहार और वाणी द्वारा समाज में आदर्शों के प्रति अवहेलना का भाव जगाते हैं। यह बहुत घातक है। उपभोग, संग्रह और विलास में डूबे व्यक्ति और समाज को रास्ता दिखाने वाले दीपक आदर्श ही हैं। ये दिए जलते रहने चाहिए इनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। इनके प्रति निष्ठा और श्रद्धा होनी चाहिए। इनको बुझाने से अंधेरा गहरायेगा। तब रास्ता दिखाने वाला कोई न रहेगा। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं:–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
सः सत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

अर्थात् श्रेष्ठ जन जिस प्रकार का आचरण करते हैं अन्य लोग वैसा ही करते हैं। वे जो

प्रमाण प्रस्तुत करते है लोक उनका अनुसरण करता है। इसलिये समाज के श्रेष्ठ शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्तियों को इस दिशा मे बहुत सावधान रहना चाहिए। आदर्श कभी अप्रासंगिक नही होते। उपभोग और संग्रह सुख यथार्थ कितना भी हो, कभी वरेण्य नहीं होता। सोचिए? हम अपनी भावी पीढ़ी को क्या देकर जा रहे है? भोग और संग्रह अथवा सद्गुण और लोक–संग्रह। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।

अर्थात् जो भोग और ऐश्वर्य मे आसक्त है तथा जिनका अन्तःकरण इनके द्वारा हर लिया गया है उन्हे परमात्मा की प्राप्ति का निश्चय ही नहीं होगा, परमात्मा की प्राप्ति तो दूर की बात है। सामान्य व्यक्ति आदर्शों की उपेक्षा करे और यथार्थ को सब कुछ माने तो समाज की अधिक हानि नही होती क्योंकि वे समाज के मानक नही होते। फिर भी मनुष्य अपने विचार, भावना और कर्म से एक सूक्ष्म जगत का निर्माण करता है, एक वातावरण बनाता है जो उसके साथ सदैव रहता है। जब व्यक्ति आदर्श, उदार, निःस्वार्थ एवं परोपकारी होता है तो अपने चारों ओर एक विशेष प्रकाशमय वातावरण बनाता है जो सबको प्रभावित करता है।

हमारी परम्परा मे संतो को भगवान का प्रतिरूप माना गया है। उनसे मिलने का सुख स्वर्ग और मुक्ति के सुख से बड़ा माना गया है। कबीरदास ने कहा– **कबीर संगति साधु की कदे न निफल होइ।** और तुलसीदास ने कहा– **संत मिलन सम सुख जग नाहीं।** संतों की ये उक्तियां उनके जीवन के व्यापक अनुभव की देन है। मनुष्य को अपनी भौतिक, प्राणिक और मानसिक चेतना के निम्न स्तरों से मुक्ति पाने के लिये, उनमें आत्मा के प्रकाश को भरने के लिए, भगवत् प्रेम में निरन्तरता बनाए रखने के लिए सन्तों से सतत् प्रेरणा लेने की आवश्यकता होती है। संत की कृपा से विवेक जगता है, तभी परमात्मा का बोध होता है, बोध होने पर श्रद्धा और विश्वास में दृढ़ता आती है और प्रभु के प्रति भक्ति बढ़ती है।

श्रीअरविन्द ने आदर्शों के सम्बन्ध में कहा है–बहुत से लोग हमें यह सलाह दे रहे है कि हम आदर्शों के पचड़े में न पड़े, जो काम हमारे हाथों के नजदीक है उसे निबटाते चलें। हमें श्रद्धा और आशा की बातें न करनी चाहिए और न ही आदर्शवादी स्वप्नों में खो जाना चाहिए। पर आदर्शों के बिना काम का मूल्य ही क्या है? अगर कार्य के पीछे प्रेरणादायी शक्ति न हो तो वह निष्फल होगा। मनुष्य साधारण रूप से अपने स्वार्थपूर्ण दैनिक कार्यों में लगा रहता है। उसे महान कार्यों की प्रेरणा देने के लिए उसके आध्यात्मिक स्व को बुलाते रहना पड़ेगा, उसके अन्दर नैतिक उत्साह जगाए रखना होगा। यह आदर्शों के प्रति निष्ठा जगाने से ही सम्भव है। भगवान बुद्ध, ईसा, शंकराचार्य और विश्व के अनेकानेक महान पुरुषों ने प्रेरणा जगाने का ही कार्य किया और महान क्रांतियां की। उन्होंने न कारखाने लगाएं और न गरीबों को दान बांटा। अन्तः प्रेरणा जगाना ही मुख्य काम है। आदर्शों को व्यक्त करने वाले शब्द सूखी हड्डियों में सांस भर देते हैं जिससे वे आदर्शों के लिए संघर्ष करने को खड़ी हो जाती हैं।

मन्त्र दृष्टा ऋषियों के ये कथन शाश्वत सत्य हैं कि जो अज्ञानी है अविद्या की उपासना करते हैं, वही अंधेरे मे नहीं जाते है वरन जो विद्या की उपासना करते है, ज्ञानी है वे भी घने अंधकार में डूबते है। आज उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षकों, समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों और समाज के प्रति सद्भाव रखने वाले सभी लोगों को इसका निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि

कहीं वे सद्‌गुणों और आदर्शों की अवहेलना करके स्वयं अंधकार में तो नहीं जा रहे हैं और समाज को अपने आचरण द्वारा अंधेरे के गर्त में तो नहीं डुबो रहे हैं। आदर्श हमारे दीपक हैं। इन्हें निरन्तर जलने दें।

इनकी अवहेलना न करें, इन्हें स्वप्न और कल्पना मान कर न छोड़ें। इनके महत्व को कम न होने दें। इनके प्रति निष्ठा और विश्वास बनाये रखें। इनको बुझने न दें। इनके बुझ जाने पर प्रकाश की किरण देकर रास्ता दिखाने वाला कोई न रहेगा। इनके अभाव में हमारी भावी पीढ़ी में अपने भीतर की दिव्यता और भागवती चेतना को जगाने की अभीप्सा ही समाप्त हो जायेगी—तब क्या विज्ञान के चमत्कार और गणित के फार्मूले उस श्रेय को प्राप्त करने की प्रेरणा देंगे। वह प्रेय की भट्ठी में जल जायेगी। वह अपने को अतिक्रमण करने के लक्ष्य को भूल जायेगी। और अपने कर्म भावना, विचार के द्वारा भगवान को नहीं शैतान को व्यक्त करने लगेगी।

OOO

परम पूज्य अनन्त श्री गुरुदेव के चरणों में

त्रिजुगी नरायन मिश्र

पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
लक्ष्य दिखने लगा जिन्दगी का हमें,
चल रहा हूँ निरन्तर उसी ओर को।
ईश्वरोमुखी हृदय प्रभु हमारा करो,
लय अवस्था में लाना हमें आपको,
बन्धनों में रहूँ, है असम्भव बहुत,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
सतत् खोया रहूँ ध्यान में आपके,
ज्ञान वैराग्य, की मन में ज्योति जले।
चित्त की वृत्तियाँ संतुलित हों सभी,
भाव सम का हमारे हृदय में पले।

प्रभु मिलेंगे हमें असम्भव कहाँ रह गया
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये
एक तुम ही प्रभु शक्ति के द्वार हो
जिन्दगी के तुम्हीं एक आधार हो
तुम से ही है यह रोशन हुई जिन्दगी
अब अँधेरा कहाँ रह गया राह में
भ्रम जरा भी हृदय में रहा है नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।

योग से आत्मसाक्षात्कार

— राजकुमार रघुवंशी —

महर्षि पतंजलि ने योग की परिभाषा देते हुए कहा है कि चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (पातंजलयोगदर्शन 1/2)

योग उन समस्त विधियों का प्रतिपादन करता है, जिससे साधक अपने प्रकृतिजन्य समस्त विकारों को दूर कर आत्मा के साथ संयुक्त होता है। इस आत्मस्वरूप की उपलब्धि के लिये वह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि का पूर्ण परिशोधनकर उन्हें इस योग्य बना देता है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सके तथा उसी में स्थित हो जाये। इन सबके लिये एक ही विधि है–चित्त की वृत्तियों का निरोध, जिसके लिये ये आठ साधन हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इन साधनों के विधिवत् अनुष्ठान से मनुष्य परमपद को प्राप्त करता है।

योग संकल्प की साधना है, यह अपनी इन्द्रियों को वश में कर चेतन आत्मा से संयुक्त होने का विज्ञान है। यह एक अनुशासन है, मनुष्य के शरीर, इन्द्रियों, मन आदि को पूर्ण अनुशासित करने वाला विज्ञान है।

आत्मा चैतन्य है। वह द्रष्टा एवं साक्षी है, किंतु वह निष्क्रिय द्रष्टामात्र नहीं है। वह प्रकृतिजन्य किसी भी क्रिया में स्वयं भाग नही लेता, किंतु वह सभी क्रियाओं का कारण और उनकी प्रेरक शक्ति है, चित्त की शक्तियाँ जड़ हैं। जिनके निरोध से चैतन्य आत्मा अपने शुद्ध रूप में अवस्थित हो जाता है। यही कैवल्य अर्थात् मोक्ष की स्थिति है।

जिस प्रकार शुद्ध स्वर्ण में अन्य धातुओं के मिश्रण से विभिन्न प्रकार के स्वर्णाभूषण बनाये जाते है, किंतु उसका परिशोधनकर उसमें से मिश्रित पदार्थ निकालकर पुनः शुद्ध स्वर्ण प्राप्त किया जाता है। ऐसी ही प्रक्रिया योग की है, जिससे प्रकृति जन्य समस्त तत्वों को अलगकर शुद्ध आत्मतत्व की उपलब्धि करती है, इससे आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, जो उसका शुद्ध स्वरुप है।

आत्मा के स्वरूप में स्थित होने के लिए क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट भेद से चित्त की पाँच वृत्तियाँ मानी गयी हैं–

1. प्रमाणवृत्ति– प्रमाणों के आधार पर किसी वस्तु के सत्यासत्य का निर्णय करना चित्त की प्रमाणवृत्ति है। यह वृत्ति इन्द्रियविषयों के पूर्वाभ्यास से सम्बन्धित विषयों के प्रसंग आने पर उभरती है।

2. **विपर्ययवृत्ति**– इस वृत्ति के कारण उसे कोई वस्तु जैसी है, वैसी न दिखायी देकर उसमें अन्य वस्तु का भ्रम हो जाता है। जैसे रस्सी में साँप की भ्रान्ति हो जाना। वस्तुस्थिति की

जानकारी न होने से उसका प्रतिकूल ज्ञान होता है, इससे वह असत् को सत् और सत् को असत् मानने लगता है।

3. **विकल्पवृत्ति**– इस वृत्ति के कारण वह किसी वस्तु के न होने पर भी उसकी कल्पना करता है। जैसे भय, आशंका, सन्देह, अशुभ, सम्भावना आदि की उपस्थिति के अभाव में भी उसकी कल्पना करना।

4. **निद्रावृत्ति**– जिसमें कुछ भी दिखायी न दे, किंतु उस अभाव की प्रतीति होती है। आलस्य, प्रमाद, उपेक्षा, अवसाद, अनुत्साह इसी वृत्ति के कारण होते हैं।

5. **स्मृतिवृत्ति**– इसके कारण जो देखा या जाना गया है, उसका पुनः स्मरण हो आता है।

योगसाधना का उद्देश्य उन दुष्प्रवृत्तियों के साथ संघर्ष करना है, जो पशुयोनियों से चली आ रही है। आत्मा के स्वरूप पर ये पशुवृत्तियाँ प्रभावी हो रही है। योग में इन्हीं के निरोध की बात कही गयी है, जिससे कि आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट हो सके।

ईश्वर अथवा आत्मा कोई उपलब्ध होने वाली वस्तु नहीं है, वह तो नित्य उपलब्ध है ही। जिस प्रकार समुद्र में लहरों के कारण उसमें पड़ा चन्द्रमा का बिम्ब दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार इस चित्त में नित्य उठ रही तरंगों के कारण उससे परे स्थित आत्मा दिखायी नहीं देता। योग शास्त्र में इसी को अविद्या कहा गया है, यदि इन वृत्तियों का योग–साधनों द्वारा निरोध कर दिया जाये तो ये संसार के भोगों की ओर से विमुख हो जाती हैं तथा शान्त हो जाती हैं। तब साधक को आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। आत्मज्ञान होने पर साधक को संसार से पूर्ण वैराग्य हो जाता है तथा वह स्वयं द्रष्टा–साक्षी बन जाता है।

महर्षि पतंजलि वृत्तियों के निरोध के दो उपाय बतलाते हैं– **अभ्यास और वैराग्य**। विषयों के प्रति जो आसक्ति है, उसका सर्वथा त्याग ही वैराग्य है–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (पातंजलयोगदर्शन 1/12)

घर छोड़कर जंगल चले जाना, भगवा वस्त्र पहनना, शरीर पर राख लपेट लेना, नग्न रहना आदि वैराग्य नहीं है; बल्कि सांसारिक विषयों के प्रति जो वासना है, आसक्ति है, लगाव है– इनका त्याग ही वैराग्य है। दूसरे शब्दों में वासना ही संसार है एवं उसका त्याग ही मुक्ति है। ये सांसारिक विषय ही दुःख के कारण हैं तथा अपने स्वरूप (आत्मा) में स्थित हो जाना ही परमानन्द की स्थिति है, इसीलिये महर्षि पतंजलि वैराग्य की बात कहते हैं। जो विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग किये बिना योगाभ्यास करते हैं, वे पथभ्रष्ट ही होते हैं तथा पाखण्डी हो जाते हैं, इसलिए वैराग्यस्वरूप होकर निरन्तर मन की वृत्तियों को रोकने का अभ्यास करने से निश्चित ही साधक को आत्मज्ञान का सुख मिलता है, किंतु संसारी ठीक इसके विपरीत करता है, वह आत्मा और ईश्वर के प्रति वैराग्य किये हुए है तथा इन वृत्तियों को रोकने का नहीं, इनको और दृढ़ और विकसित करने का प्रयत्न कर रहा है। प्रकृति से जो कुछ मिला है, उसका अधिकाधिक उपयोग कर रहा है, इससे संसार में तथाकथित विकास तो हुआ है, किंतु भोगवृत्ति

तथा आसक्ति भी बढ़ गयी है, जिससे व्यक्ति दु:खी अधिक हुआ है।

सच्चा सुख तो आत्मज्ञान के बिना नहीं मिल सकता तथा इसके लिये वृत्तियों का निरोध आवश्यक है, जो निरन्तर अभ्यास और वैराग्य से ही सम्भव है।

भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है–हे महाबाहो! निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। परंतु हे कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से यह वश में होता है। कर्म छोड़ना वैराग्य नहीं है, आसक्ति छोड़ना ही वैराग्य है।

आत्मज्ञान के लिये चित्त को बार–बार यत्नपूर्वक रोकने का निरन्तर अभ्यास करना आवश्यक है, इस अभ्यास में काल की कोई अवधि नहीं है। लम्बा समय भी लग सकता है, पूरा जीवन भी लग सकता है, इसलिये साधक में धैर्य होना चाहिए तथा यह भी दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि सत्प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता। वह अगले जन्म में भी संस्कार रूप में विद्यमान रहेगा, जिससे आगे की साधना में प्रगति शीघ्र होगी। अभ्यास में व्यवधान भी नहीं आने देना चाहिए, वह नियमित एवं निरन्तर चलते रहना चाहिए।

आत्मा एक है, आत्मतत्वज्ञ पुरुष संसार के समस्त भूतों को आत्मा में तथा आत्मा को समस्त जीवों में देखता है, जिस प्रकार एक धागे में अनेक फूल पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार एक ही आत्मा में समस्त भूतों (जीवों)– का निवास है। इस प्रकार समत्व भाव को प्राप्त हुए ज्ञानीजन अनुकूल परिस्थितियों में हर्षित नहीं होते तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में खिन्न नहीं होते। जो व्यक्ति आत्मा को समस्त भूतों में देखता है और आत्मा में सबको देखता है, वह किसी से द्वेष नहीं करता, ऐसा व्यक्ति शोक या मोह से दूर रहता है।

(कल्याण से साभार)
प्रेषक : श्री आर.पी. श्रीवास्तव, ग्वा.

सर्वत्र ईश्वर की छवि निहारते रहना ज्ञानयोग है। निश्चल भाव से अपने को ईश्वर के हाथ सौंप देना भक्तियोग है और ईश्वर भाव से सभी प्राणियों के कल्याण के लिए निष्काम कर्म करते रहना कर्मयोग है। यह तभी सम्भव है जब अन्तरात्मा के दिव्य सूत्र में बुद्धि, मन और इन्द्रियों को गूँथ दिया जाय। ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण समस्त प्राणियों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं। अत: मन के द्वारा विषयों, धन एवं प्रभुत्व की आसक्ति का मानसिक त्याग कर पूर्ण समर्पण भाव से हृदयस्थ परमात्मा का चिंतन एवं आश्रय ग्रहण करने से शाश्वत् शान्ति सुलभ होगी।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, आलस्य एवं अहंकार का मूल कारण है देहाभिमान, उसी के कारण मनुष्य दु:खी है, अत: आत्मनिष्ठ बनो।

माँ का कर्तव्य

अंशुमानदेव मालवीय

भारतीय संस्कृति में माँ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका मानी गयी है। माँ हमारे चरित्र निर्माण में बहुत सहायक होती है। यदि हम किसी महान सन्त, साधु या महात्मा के जीवन चरित्र को देखें तो ज्ञात होगा कि इनके महान बनने में व दिव्य जीवन प्राप्त करने में इनकी माँ की अहम भूमिका रही है। आज के इस भौतिकवादी युग में जहाँ लोग आधुनिकता को विशेष महत्व दे रहे हैं, धर्म को छोड़कर धन के पीछे भाग रहे हैं और भौतिक सुख को जुटाकर उसी में सुख का अनुभव कर रहे हैं, वहीं वे अपने बच्चों को सही संस्कार नहीं दे पा रहे हैं। परिणामस्वरूप इसके दुष्परिणाम भयावह रूप में हमारे सामने आते जा रहे हैं।

आज के अधिकांश आधुनिक माता–पिता अपने बच्चों के लालन–पालन के रूप में उन्हें साज–संवार कर स्कूल भेजने को अपना कर्तव्य मान रहे हैं। और बच्चों में संस्कार डालने की ओर उनका कतई ध्यान नहीं है। जबकि अपने बच्चों को प्रत्येक क्षण उत्तम संस्कार देना प्रत्येक माता–पिता का प्रथम कर्तव्य है। अपने बच्चों की बुरी आदतों को निरुत्साहित करना और अच्छे कर्तव्य एवं व्यवहार के लिए उन्हें उत्साहित करना अति आवश्यक है, ताकि वे संस्कारवान बनें और एक श्रेष्ठ व उत्तरदायी नागरिक के रूप में उनका विकास हो। माँ चूँकि बच्चे की प्रथम गुरु मानी गयी है, अतः उसे अपने बच्चे की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। वह जैसे भी संस्कार बच्चे को देगी वह बालक वैसा ही व्यवहार करेगा।

बहुत पुरानी बात है। एक डाकू था, जिसके नाम की चर्चा दूर–दूर थी। एक दिन वह मन्दिर से घण्टा चुराते पकड़ा गया। पकड़े जाने पर उसे पंचों के सम्मुख उपस्थित किया गया। पंचों ने इस असामान्य अपराध के लिए उसे फाँसी की सजा सुनायी। फाँसी की सजा सुनकर डाकू ने कहा – सरपंच जी मैं सजा पाने से पहले अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ। तब उसकी माँ को बुलवाया गया। डाकू अपनी माँ के पास गया और उसके कान के पास अपना मुँह ले जाकर उसका कान काट लिया। उसकी माँ बहुत तेज चिल्लायी। तब पंचों ने पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया? तब डाकू बोला – सरपंच जी! जब मैं छोटा था तो स्कूल में पढ़ता था। मैंने एक बार अपने एक सहपाठी की पेंसिल चुरा ली। घर आने पर माँ ने मुझे डाँट लगाने की बजाय मुझे शाबासी दी। वह प्रसन्न थी। बाद में मैं नित्य चोरी करता चला गया। मेरी यही माँ मुझे प्रोत्साहित करती चली गयी और आज मैं जग जाहिर डाकू बन गया। इस स्थिति तक पहुँचाने में मेरी माँ का ही हाथ है, इसीलिए मैंने इसे यह सजा दी है।

आज राष्ट्र निर्माण में महात्मा गाँधी और पं. मदनमोहन मालवीय सरीखे संस्कारवान नेताओं की आवश्यकता है। निश्चित ही इनकी माताओं ने इन्हें ऐसे संस्कार दिये जिसके कारण ये नेता राष्ट्रकार्य को ही अपने जीवन का एकमात्र ध्येय मानने लगे। ऐसी मातायें धन्य हैं, जिन्होंने ऐसे सपूतों को जन्म दिया। आइये हम भी अपने बालकों को संस्कारक्षम बनाने का संकल्प लें।

तत्व क्या है?

प्रस्तोता – अशोक दिग्विजय

(मई अंक का शेष)

भगवान के प्रति प्रेम जब पराकाष्ठा को पहुँच जाता है तो ज्ञान और कर्म धूमिल हो जाते हैं। मनुष्य केवल निर्गुण, ऐकान्तिक, अहैतुकी, आत्यन्तिकी भक्ति की परिधि में आ जाता है। श्रीमद्भागवत इसी को भगवद्भाव, ब्रह्मपद, भागवत भक्ततम, सत्तम, परमभक्त अथवा मानवोत्तम कहता है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम अथवा उद्धव का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम इसी श्रेणी का था। प्रेम की यह परिधि ही या शुद्ध प्रेम भी भगवतत्त्व है। ऋग्वेद ने जिस 'पुरुष' को हमारे सम्मुख उपस्थित किया है, वह पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण है। ब्रह्म का तथ्य उनमें पूर्णतया विद्यमान है। वे उसके तत्व हैं, अतएव ब्रह्म तथ्य है। अद्वैतमत के समर्थक अप्पय दीक्षित के 'वेदान्तकल्पतरुपरिमल' आदि ग्रन्थ बहुत उच्चकोटि की रचनाएँ हैं। 16वीं सदी के इस पण्डित ने शिव को ही ब्रह्म का रूप माना था। शिव ही ब्रह्म के तत्व हैं। शिव या श्रीकृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। उसी समय के मधुसूदन सरस्वती का 'अद्वैतसिद्धि' ग्रन्थ भी ब्रह्म के सांसारिक तत्व को स्वीकार कर हमें इसी तथ्य की ओर ले जाता है कि 'पुरुष' के चिद्रूप तत्व के परे और कहीं कुछ नहीं है।

मृत्यु

अस्तु! यहाँ एक ही तत्व तथा तथ्य की ओर ध्यान देना–दिलाना आवश्यक दीखता है। सब कुछ अस्वीकार किया जा सकता है, पर मृत्यु की सत्ता सर्वोपरि सिद्ध है। जब ऐसी स्थिति है तो फिर सावधान होकर ही जीवन चलाना होगा। केवल मन को तर्क करने के लिये छोड़ देने से काम न चलेगा–

मन लोभी, चित्त लालची, मन चेला, चित चोर।
मनके मते न चालिये, पलक पलक कछु और ।।

इसीलिये सन्त एकनाथ ने कहा है–

जेवि हिरेनि हीरा चिरिजे, तेवि मनेचि मन धारिजे।।

जिस तरह हीरा से हीरा चिरता है, उसी तरह मन से ही मन वश में होता है। संतवाणी संग्रह (भाग 1) में लिखा है–

भ. त. अ. 5–

आदि नापारस अहै, मन है मैलो लोह।
परसत ही कंचन भया, टूटा बंधन मोह।।

मन उसी का शुद्ध होगा जिसने कर्म का रहस्य समझ लिया। ईश्वर की सृष्टि में अपने

को उसका अन्न मानकर जो –'आत्मौपम्येन पुरुष:प्रमाणमधिगच्छति' या जैनियों के अनुसार 'अतानं उपमं कत्वा न हन्येन, न घातयेत'– अपनी मिसाल लेकर न किसी का हनन करे, न घात करे– और लोग संत रामदास के–

मना सज्जना भक्ति पन्थेचि जावे।

'रे सज्जन मन! भक्ति–पथ पर विचर' इस कथन को मानते हैं, वे ही 'जो कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' होते हैं। जो कर्म में वीर है, वह धर्म में भी वीर है। जीवन का अन्त मृत्यु है। यही जीवन–तत्व है। बौद्ध ग्रन्थ 'धम्मपद' में लिखा है–

यथा दण्डेन गोपालो गावो पचति गोचरे।
एवं जरा च मच्चु च आयुं पाचन्ति पाणिन।।

'जैसे गोचर में दण्डे से ग्वाला गाय को चराता है, वैसे ही जरा और मृत्यु प्राणीमात्र को चरा रही है।' पर हम इसे भूल गये हैं। हम लोग तृष्णा में मरे जा रहे हैं–

सेठजी को फिक्र थी, एक–एक के दस कीजिये।
मौत आ पहुँची कि हजरत जान वापस कीजिये।।

दूसरों का अन्धानुकरण करने से काम न चलेगा। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'शेष प्रश्न' में शरद बाबू ने लिखा है–'अनुकरण से मुक्ति नहीं, मुक्ति मिलती है–ज्ञान से।' ज्ञानी जानता है–

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यूँ कब ही इस जीवका, साथी सगा न कोय।।
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीवका, कोई न राखनहार।।

किंतु भगवत्तत्व में विश्वास करने वाला मरता नहीं है, वह तो अपने इष्ट के पास जा रहा है।

आदमी सोया जमी पर लोग कहते मर गया।
वह बेचारा था सफरमें, आज अपने घर गया।।

एक विचारवान् ने मानव–शरीर के लिये लिखा है–

यह है एक पालना डोरी, हिलाती है रगें जिसकी।
यह वह झूला है, जिसमें, जिन्दगी को नींद आती है।।

भगवतत्व का ज्ञान उसी को है, जो मृत्यु को पहचानता है–

घट बिच जल है, जल बिच घट है, बाहर भीतर पानी।
घट फूटा जल जलहि समाना, यह तथ्य कथ्यी ज्ञानी।।

भगवत्तत्व उस तिरोधान में है, जो हमें भगवान् के पास ले जाती है।

□□□

जादू सा असर करता है भारतीय विचार

स्वामी विवेकानन्द

भारत का दान है **धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता**। धर्म प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे-आगे मार्ग निष्कंटक करती हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्व को शोणित-प्रवाह पर ढोने की आवश्यकता नहीं। ज्ञान और दार्शनिक तत्व खून से भरे जख्मी आदमियों के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शान्ति और प्रेम के पंखों से उड़कर शान्तिपूर्वक आया करते हैं, और हुआ भी सदा सही है। अतएव संसार के लिए भारत को सदा कुछ देना पड़ा है। लन्दन में किसी युवती ने मुझसे पूछा, ''तुम हिन्दुओं ने क्या किया? तुमने कभी किसी भी जाति को नहीं जीत पाया है।'' अंग्रेज जाति की दृष्टि में-वीर, साहसी, क्षत्रियप्रकृति अंग्रेज जाति की दृष्टि में-दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करना ही एक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ गौरव की बात समझी जाती है। यह उनके दृष्टि बिन्दु से सत्य भले ही हो, किन्तु हमारी दृष्टि इसके बिल्कुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से यह प्रश्न करता हूँ कि भारत के श्रेष्ठत्व का क्या कारण है, तब मुझे यह उत्तर मिलता है कि हमने कभी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त नहीं की, यही हमारा महान् गौरव है। तुम लोग आजकल सदा यह निन्दा सुन रहे हो कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेने में सचेष्ट नहीं; और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे ऐसे व्यक्तियों के मुँह की होती है, जिनसे हम अधिकतर ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। मुझे यह जान पड़ता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इस तथ्य के समर्थन की प्रधान युक्ति यही है कि हमारे धर्म ने कभी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की, उसने कभी खून की नदियाँ नहीं बहायीं, उसने सदा आशीर्वाद और शान्ति के शब्द कहे, सबको उसने प्रेम और सहानुभूति की कथा सुनायी। यहीं, केवल यहीं, दूसरे धर्म से द्वेष न रखने के भाव सबसे पहले प्रचारित हुए, केवल यहीं परधर्म-सहिष्णुता तथा सहानुभूति के ये भाव कार्यरूप में परिणित हुए। अन्य देशों में यह केवल सिद्धान्त-चर्चा मात्र है। यहीं, केवल यहीं, यह देखने में आता है कि हिन्दू लोग मुसलमानों के लिए मसजिदें और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

अतएव आप समझ गये होंगे कि किस तरह हमारे भाव धीरे-धीरे शान्त और अज्ञात रूप से दूसरे देशों में गये हैं। भारत के सब विषयों में यही बात है। भारतीय विचार का सबसे बड़ा लक्षण है, उसका शान्त स्वभाव और उसकी नीरवता। जो प्रभूत शक्ति उसके पीछे है, उसका प्रकाश जबरदस्ती से नहीं होता। भारतीय विचार सदा जादू सा असर करता है।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

स्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर मेरा डाकघर (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. मेंदर कोरसा पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह प्रिंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग आधारित विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ______

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाऊलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाऊलाल शर्मा